डॉ० नारायण दत्त श्रीमाली
अमृत बूंद

प्रदर्शिका

मेरा जीवन एक ऐसी लहर के समान है, जिसने विस्तृत सागर के एक किनारे से यात्रा प्रारम्भ की है और जो सागर के दूसरे किनारे को छूने की आकांक्षा रखती है। इस यात्रा में इसने क्या कुछ नहीं देखा, गरजते-उफनते समुद्र को देखा है, तो हजारों फीट उछलती लहरों का सामना किया है, भयंकर वात्याचक्र से आमने-सामने हुई है, तो पत्थरों से टक्कर ली है, इसने समुद्र के विकराल और भयंकर रूप को देखा है, तो उसके शांत मंथर सरल हृदय को भी देखा है, सागर के क्रोधित रूप से उलझी है, तो उसके स्निग्ध निश्छल हृदय को भी निहारा है। इस छोटी सी यात्रा में उसने वह सब कुछ देख लिया है, जो लाखों-करोड़ों को देखना नसीब नहीं होता, परन्तु इस यात्रा में एक अनुभूति ऐसी भी हुई, जिसने जीवन को झकझोर कर रख दिया, मन और प्राण को एक अपूर्व आह्लाद से भर दिया और ऐसा लगा, कि जैसे जीवन ने वह सब कुछ पा लिया, जो पाना चाहता था। इससे जीवन की रिक्तता समाप्त हो गई, जीवन के अधूरेपन ने पूर्णता प्राप्त कर ली; लहर जो भटक रही थी, उसने

एक स्थिरता सी प्राप्त कर ली – यह अनुभूति मेरे जीवन का गौरव है, मेरे जीवन की सार्थकता है, और सबसे बढ़कर मेरे जीवन की पूर्णता है।

इस अनुभूति की चर्चा करूं, इससे पहले यह आवश्यक है, कि मैं अपने जीवन के कुछ पुराने पृष्ठों को भी पलटूं, जिससे यह कड़ी जुड़कर पाठकों को समझ में आ सके; बीच के जो अलिखित पृष्ठ हैं, उन्हें स्पष्ट कर दूं, जिससे उस अनुभूति की पृष्ठभूमि पूर्णतः स्पष्ट हो सके।

मैं विश्व के उस भाग में पैदा हुआ हूं, जो वैभव में, सम्पन्नता में सबसे बढ़कर है, साथ ही अमेरिका के उस परिवार में मैंने आंखें खोली थीं, जिनके जीवन में वैभव एक आवश्यक अंग बन गया था। चारों तरफ बिखरा हुआ वैभव, फैला हुआ विस्तृत व्यापार, हाथ जोड़े खड़े नौकरों की लम्बी कतार और बरसता हुआ धन, लुटाने, भोगने और बिखेरने को आतुर हाथ और मन, पर दौलत कुछ इस प्रकार से बरस रही थी, कि इतना सब कुछ करने के बावजूद भी कम होने का नाम ही नहीं ले रही थी, अपितु बढ़ रही थी – और इसके मूल में था, मेरे पूज्य दादा जी का जमाया हुआ व्यापार, पिताजी द्वारा फैलाया हुआ व्यापार, जिनका एक पांव न्यूयार्क में रहता तो दूसरा वाशिंगटन में, एक दिन कनाडा में बीतता तो दूसरा फ्रांस में। व्यापार के सिलसिले में वे निरन्तर यात्रा पर रहते । मेरे पिताजी के पास स्वयं का एक खूबसूरत वायुयान था और अब भी है, जिसे वे स्वयं चलाते और शीघ्रता से एक स्थान से दूसरे स्थान, और दूसरे स्थान से तीसरे स्थान पर जाकर व्यापार देखते। कुल मिलाकर कहने का तात्पर्य यह है, कि जन्म लेने के बाद कमाने की समस्या मेरे सामने कभी नहीं रही, हमेशा खर्च करने की ही समस्या रही, कि कहां पर खर्च किया जाये, किस प्रकार से खर्च किया जाये, आखिर खर्च करने के नये-नये तरीके निकालने की भी हद होती है।

पर हकीकत में मैं इस वैभव से ऊब चुका था, मैं शांति चाहता था, एकांत चाहता था, हृदय को ठंडक और तृप्ति मिले, ऐसी जगह जाना चाहता था; इस अवधि में मैं यूरोप, कनाडा, जर्मनी, जापान, फ्रांस आदि घूम चुका था, और एक से अधिक बार इन देशों की यात्रा कर चुका था, पर शांति कहीं नहीं थी, सभी जगह वैभव, ग्लैमर, डांस, शराब और प्रदर्शन था, होटलों की

चमक-दमक और घुंघरुओं की छ्नछनाहट थी, परन्तु कहीं पर भी आत्मतृप्ति नहीं थी, मन-मस्तिष्क की शांति नहीं थी, हृदय को जो चाहिए था, वह नहीं मिल पा रहा था, बेचैनी मन और मस्तिष्क में कुलबुला रही थी।

. . . और इसी उधेड़बुन में एक दिन मैंने और एमिस ने भारत यात्रा का निश्चय कर लिया, 'एमिस' मेरी प्यारी और खूबसूरत पत्नी है, जो मेरी ही तरह वैभव में पली है, वैभव और प्रदर्शन में ही जिसने आंखे खोली हैं . . . और शांति की खोज में जिसका मन भी व्याकुल था। एक दिन जब मैंने उसे भारत यात्रा का विचार बताया, तो वह प्रसन्नता से उछल पड़ी और मुझसे लिपट गई, भारत का नाम लेते ही उसके मुंह पर जो लालिमा और रौनक आई थी, उसे मैं आज भी भूला नहीं हूं।

पर भारत मेरे लिए सर्वथा अपरिचित था, न तो वहां पर मेरे पिताजी का या मेरा व्यापार था और न भारत के रहन-सहन से, तौर-तरीके से परिचित था, भारत के बारे में जो कुछ मेरी जानकारी थी केवल पुस्तकों के माध्यम से ही थी। पुस्तकों में भी भारत के बारे में इतनी अधूरी और अपूर्ण जानकारी मिलती है, कि उससे किसी सही निर्णय पर नहीं पहुंचा जा सकता, फिर भी मैंने भारत के बारे में जो कुछ भी सामग्री प्राप्त हो सकी, खरीद कर पढ़ ली।

परन्तु जैसा कि मैंने अभी-अभी बताया, इन पुस्तकों से कोई सांगोपांग जानकारी उपलब्ध नहीं होती, यह जरूर मेरे मानस में था, कि **भारत चाहे भौतिक दृष्टि से उन्नत और सर्वश्रेष्ठ न हो पर आध्यात्मिक दृष्टि से वह आज भी सर्वोपरि है; विज्ञान के क्षेत्र में भले ही कुछ पीछे हो पर ज्योतिष, आयुर्वेद आदि के क्षेत्र में वह आज भी शिरोमणि है — इसमें कोई संदेह नहीं; आज भी भारत में इस प्रकार के योगी, साधु और संन्यासी हैं, जो अद्वितीय हैं, साधारण से दिखाई देने वाले ये व्यक्तित्व कितने गरिमावान और महिमावान हैं, यह यूरोप में बैठे हुए ज्ञात नहीं हो सकता** . . . और हम—मैं और एमिस—किसी ऐसे व्यक्तित्व के सान्निध्य में जाना चाहते थे, जो अद्वितीय हो, ईश्वर का अंश हो, तंत्र-मंत्र, ज्योतिष आदि के क्षेत्र में भारत का प्रतिनिधित्व करता हो, जो सही रूप में भारत हो—पर आशंका बराबर मन में बनी रही, कि क्या ऐसी विभूति के दर्शन हो सकेंगे?

ऐसे व्यक्तित्व का सान्निध्य प्राप्त हो सकेगा और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि क्या ऐसा महिमावान युग पुरुष खोजने पर मिल भी सकेगा या नहीं?

परन्तु इन प्रश्नों के उत्तर न्यूयार्क में बैठे बिठाये तो मिलना सम्भव न था, यह तो तभी सम्भव था, जब भारत जाएं, वहां घूमें, यायावर जीवन बितायें और तब तक ढूंढ़ते रहें, जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाये।

आखिर, हमने सोच-विचार कर एक दिन न्यूयार्क छोड़ ही दिया, संकल्प यह लिया था, कि घर से टिकट के अलावा एक भी पैसा नहीं लिया जायेगा और न मंगाया जायेगा; भारत में रहने और खाने की व्यवस्था स्वयं अपने प्रयत्नों से ही करेंगे और तब तक, वापिस नहीं लौटेंगे जब तक कि हम अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो जायेंगे।

अमेरिका से यूरोप और फिर फ्रांस होता हुआ एक दिन मैं एमिस के साथ पालम हवाई अड्डे पर उतरा, दिल्ली का हवाई अड्डा एक आम हवाई अड्डे की तरह है, जिसमें कोई विशेष बात नहीं लगी पर मन में इस बात की बराबर गुदगुदी और प्रसन्नता अनुभव हो रही थी, कि आखिर हम उस स्थान पर पहुंच गये हैं, जहां से हमें वास्तविक यात्रा प्रारम्भ करनी है। भारत के भीतर झांककर देखना है, कि जिस गौरव और महिमा से भारत मंडित था, क्या उसका अस्तित्व अब भी शेष है या लुप्त हो चुका है? 'महर्षि योगानन्द' की पुस्तक ''एक योगी की आत्मकथा'' में जिन साधनाओं का उल्लेख है, क्या वे अब भी जीवित हैं, या नहीं? ब्रंटन ने जिन सम्प्रदायों का उल्लेख किया है, उनमें चेतना है या नहीं। इसके अलावा ब्लास्की किपलिंग, अल्काट, हैनर, यौंगू आदि ने जो कुछ भारत की सिद्धियों और सिद्धों के बारे में लिखा है, उन सबसे साक्षात्कार करने के लिए हम उतावले थे और हम चाहते थे, कि जल्द से जल्द भारत की उस दिव्य धड़कन को हम सुन सकें जो हमारा अभीष्ट था।

एमिस भी करीब-करीब वही सोच रही थी, जो मैं सोच रहा था, होटलों, क्लबों तथा डांस-रूम में घूमते-घूमते तो उसकी भी आधी उमर बीत चुकी थी; जो शांत हो, कृत्रिमता से दूर हो, निश्छल हो किसी ऐसे वनाश्रम में रहना चाहती थी, जहां अलौकिक ज्ञान महिमा से मण्डित योगी या साधु हों, जो जीवन-मरण की गुत्थियां सुलझा चुके हों या ऐसे व्यक्तित्व के सम्पर्क

में रहने को आतुर थी, जो मंत्र साधना में निष्णात हो, मंत्र-तंत्र की शक्तियों पर अधिकार हो, इस विज्ञान के माध्यम से असम्भव को सम्भव करने की क्षमता रखता हो।

दिल्ली में मैं लगभग पन्द्रह दिनों तक रहा पर मन में बेचैनी ही रही, क्योंकि जिस उद्देश्य के लिए मैं यहां आया था, उस उद्देश्य की पूर्ति दिल्ली में सम्भव नहीं थी, अपितु मन उल्टे भ्रम में पड़ गया।

एक दिन एक क्लब में मैं और एमिस गये, तो वहां राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर मिले, चर्चा चलने पर वे ठठाकर हंस पड़े और बोले – 'अध्यात्म! अरे भाई! अध्यात्म तो इस देश से कभी का लुप्त हो चुका, अब तो यहां केवल पाखण्ड रह गया है, ढोंग और मक्कारी रह गई है, यहां कहां अध्यात्म?'

एक प्रकार से मन खट्टा हो गया।

कुछ दिनों बाद एक होटल में एक सभ्य प्रतिष्ठित और शालीन सज्जन से भेंट हो गई, जो किसी फर्म में महत्त्वपूर्ण पद पर थे, जब बात ज्योतिष, मंत्र-तंत्र, अध्यात्म पर चली तो वे अत्यन्त ही रहस्यमय तरीके से समझाते हुए बोले – 'आप बेकार में क्यों समय बरबाद कर रहे हैं, कोई सात सौ, आठ सौ साल पहले यहां पँर अध्यात्म या तंत्र-मंत्र रहा होगा, तो रहा होगा अब यहां कुछ नहीं है, अच्छा तो यह होगा कि आप वापिस चले जायें।'

परन्तु मेरा मन इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं था। मैं जानता था, जो पश्चिम के दीवाने हैं, जिनके मन-मस्तिष्क पर विदेश का भूत अधिकार कर चुका है, ऐसे लोग वे होते हैं, जो अपने आप को भुला बैठे हैं और साथ ही साथ अपने देश की गरिमा और महिमा को भुला बैठे हैं। इन थोड़े से दिनों में ही भारत की वायु से जो प्राण-गंध हमें मिली थी, उससे यह विश्वास हो गया, कि ज्योतिष, अध्यात्म, तंत्र-मंत्र का अक्षय भण्डार इस भारत में ही कहीं न कहीं अवश्य है और उस भण्डार को हमें हर सम्भव प्रयत्न से ढूंढ़ निकालना है।

हम करीब पन्द्रह-बीस रोज तक दिल्ली में रहे, पर इस गहमागहमी में, इस भीड़-भड़क में, इस चमक-चकाचौंध में एक दिन भी हमारा मन नहीं

लगा, जितना जल्दी हो सके, हम दिल्ली से दूर भागना चाहते थे।

दिल्ली की गर्मी और फिर मेरे जैसे वैभव में पले विदेशी व्यक्ति के लिए तो दिल्ली की गर्मी असह्य सी थी। इन दिनों तो पूरा भारत भट्टी के समान धधकने लग जाता है और इन धधकते दिनों में मैं और एमिस रेल से और बस से यात्रा कर रहे थे, एक स्थान से दूसरे स्थान पर ज्ञान की खोज में भटक रहे थे।

दिल्ली से हम हरिद्वार पहुंचे, जो वर्तमान में आध्यात्मिक-पुण्य का स्रोत कहा जाता है, गंगा के किनारे-किनारे काफी भटके और एक दिन अध्यात्म केन्द्र' में जा पहुंचे, जिसका फाटक काफी बड़ा था, अन्दर भी काफी बड़ा अहाता था और कई युवक सिर मुंडाये भगवे वस्त्र पहने इधर-उधर विचरण कर रहे थे।

हमें देखकर उस केन्द्र में कुछ सरसराहट सी हो गई, कोई विदेशी-युगल केन्द्र में आया था, इतना ही काफी था; हमने एक भगवे वस्त्र पहने युवक को रोककर जब केन्द्र के संचालक से मिलने की इच्छा प्रकट की तो वह कुछ घबराहट, कुछ सकपकाहट के साथ एक दरवाजे की ओर उंगली से इशारा कर एक तरफ सरक गया।

हमने जब उस दरवाजे पर दस्तक दी, तो अन्दर एक प्रौढ़ सा व्यक्ति बैठा था, जो शिष्ट था, नम्र था पर आंखों में करुणा की जगह मक्कारी और चालाकी झलकती थी और इसका शीघ्र ही आभास भी हो गया।

बातचीत से ज्ञात हुआ, कि सामने बैठे हुए सज्जन सचिव थे, जो पूरे केन्द्र को चला रहे थे, हमने अब अध्यक्ष योगीश्वर विज्ञान तीर्थ से मिलने की इच्छा प्रकाट की, तो उन्होंने स्पष्ट रूप से मना नहीं किया पर उनकी बातों से टाल-मटोल स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। उनके साथ जो भी बातचीत हुई उसमें उन्होंने अधिकतर दो बातों पर ही जोर दिया — एक तो यह, कि योगीश्वर विज्ञान तीर्थ विश्व के सर्वोच्च योगी एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में सिद्ध हैं तथा दूसरे यदि काफी कुछ धनराशि मिल जाये, तो केन्द्र का विस्तार विदेशों में भी किया जा सकता है और साथ में यह फतवा भी, कि आपको तथा आपकी पत्नी को योगीश्वर प्रधान शिष्य के रूप में

स्वीकार कर लेंगे।

मैं ऊपरी मन से हां-हूं कर रहा था, परन्तु मन-ही-मन मैं उनकी बातों से ऊब गया था, वह रात वहीं व्यतीत हुई।

दूसरे दिन भी योगीश्वर के दर्शन नहीं हुए परन्तु तीन बजे के लगभग हमने उन्हें पकड़ ही लिया और बातचीत करने को विवश कर दिया।

मुझे ऐसा लगा, जैसे वे हमसे भागना चाहते हैं, प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 'नहीं' और 'हां' में ही अधिकतर देते रहे, वे बार-बार अपने वातानुकूलित कमरे की बात करते, घूम रहे शिष्यों की बात करते और कहते, कि इस समय दो सौ शिष्यों का मैं भरण-पोषण कर रहा हूं, परन्तु जब भी अध्यात्म या योग पर चर्चा चलती . . . वे आंख चुरा लेते।

तीन घण्टे की बातचीत से मैं इस निष्कर्ष पर पहुंच गया, कि यहां केवल छल-भ्रम और स्वार्थ के अलावा कुछ भी नहीं है, इसमें कोई दो राय नहीं, कि योगीश्वर विनम्र और शिष्ट थे पर विनम्रता और शिष्टता की खोज हमें थी नहीं। मुझे ऐसा लगा, कि या तो योग एवं अध्यात्म के मामले में योगीश्वर कोरे हैं या वे हमें कुछ बताना नहीं चाहते।

उसी दिन शाम को छः बजे मैंने 'अध्यात्म केन्द्र' छोड़ दिया।

पिछले दो दिनों से मेरे दिमाग में मिस्टर 'हीलर' की चर्चित पुस्तक के वे अंश घूम रहे थे, जो उन्होंने हरिद्वार से आगे स्थित 'गौर स्वामी सम्प्रदाय' के बारे में लिखे थे, मैं इसी सम्प्रदाय के अध्यक्ष से मिलकर अपनी ज्ञान पिपासा बुझाना चाहता था। रात तो मैंने एक होटल में बिताई और दूसरे दिन सुबह ही उस आश्रम में पहुंच गया, जो हीलर की पुस्तक में उल्लेखित है, परन्तु आश्रम मुझे गतिहीन लगा।

सम्प्रदाय के वर्तमान अध्यक्ष 'वेलर जी महाराज' हैं, जो बूढ़े और अशक्त हैं। मैंने अपने मन में हीलर की पुस्तक पढ़कर जो धारणा बनाई थी, वह एक ही झटके में छिन्न-भिन्न हो गई, हो सकता है, हीलर के समय में इस सम्प्रदाय में जागरुकता और गतिशीलता रही हो, परंतु अब इसमें कुछ भी बाकी नहीं रहा था।

वेलर जी महाराज से लगभग तीन-चार घंटे बातचीत हुई, पूरी बातचीत में उन्होंने यही बताया, कि मैं ईश्वर का अंश हूं, पर थक गया हूं, मैं आराम करना चाहता हूं, पर सम्प्रदाय वाले मुझे आराम नहीं करने देते; वे सोचते हैं कि मैंने यदि यह सम्प्रदाय छोड़ दिया, तो यह सम्प्रदाय छिन्न-भिन्न हो जायेगा, बिखर जायेगा।

फिर आगे बातचीत में उन्होंने बताया, कि उन लोगों का और उनके साथ ही साथ लाखों-करोड़ों भारतवासियों का यह सोचना ठीक ही है, कि यदि मैंने यह सम्प्रदाय और इससे सम्बन्धित कार्य छोड़ दिया, तो भारतवर्ष की बहुत बड़ी हानि हो जायेगी, जिसकी पूर्ति एकदम से संभव नहीं।

एमिस इनकी बातचीत से लगभग ऊब गई थी, पूरी बातचीत में हमें कुछ भी ऐसा नहीं लगा, जो हृदयपरक हो। उन्होंने अधिकतर यही बताया, कि वे ईश्वर के अवतार हैं और भारत को सही दिशा-निर्देश देने में वे ही सक्षम हैं – हमने मान लिया कि हो सकता है वे ईश्वर के अंश हों, पर मुझे तृप्ति नहीं हुई और हम दोनों ने अतृप्त मन से दूसरे दिन इस आश्रम को भी छोड़ दिया।

हरिद्वार में ही हमें पता चला कि ऋषिकेश के आसपास 'अमृत-अखाड़ा' है, जिसके स्वामी 'गोपेश्वर महाराज' अद्भुत सिद्धियों के ज्ञाता हैं और त्रिकालदर्शी हैं, एक दो और लोगों ने भी इस बात की पुष्टि की, इससे प्रेरित होकर मैंने ऋषिकेश जाने का निश्चय कर लिया।

हिमालय के बीच शांत सुरम्य गंगा के तट पर बसा ऋषिकेश वास्तव में ही शांत स्थल है, गंगा के एक किनारे ऋषिकेश बसा है और दूसरी ओर गीता भवन, स्वर्गाश्रम आदि पावन स्थल हैं, जहां लाखों-करोड़ों भारतीय आते हैं, शांति प्राप्त करते हैं और सत्संग, प्रभु-चर्चा आदि का लाभ उठाते हैं।

एक पूरा दिन हमने यहीं बिताया, दूसरे दिन मैं और एमिस पूछते-पूछते गोपेश्वर जी स्वामी के 'अमृत-अखाड़े' तक पहुंच गये। गंगा के किनारे यह

छोटा सा घेरा हुआ स्थान है, जिसमें न तो कोई नवीनता है, और न विशेषता ही, पहली नजर में तो यह अनुभव ही नहीं होता, कि यहां कहीं 'अमृत-अखाड़ा' है या यहां कोई पहुंचे हुए सिद्ध भी रहते हैं।

हम जब पहुंचे, तब दोपहर के तीन बजे थे, द्वार खुला था; हम अहाते के भीतर पहुंचे, लगभग सौ गज आगे एक पक्का मकान बना हुआ था और बीच में एक बड़ा हॉल दिखाई दे रहा था।

हम हॉल के दरवाजे तक पहुंचे, दरवाजा खुला था, हॉल में मद्धिम प्रकाश बिखर रहा था, हॉल के बीच में एक बड़े व्याघ्र चर्म पर एक व्यक्ति लेटा हुआ था, जिसकी उम्र मुश्किल से चालीस के लगभग होगी, पूरे शरीर पर मात्र एक लंगोटी पहने हुए था और सारे शरीर पर भस्मी मली हुई थी, चेहरा पुष्ट और दिव्य था, उसके चारों तरफ आठ-दस सुन्दर युवतियां अर्द्ध-नग्न सी बैठी हुई थीं, जो कि उसके शरीर से सटी हुई सी थीं और शरीर से खेल रही थीं, परन्तु उनके चेहरे पर कोई उत्तेजना या कामातुरता दिखाई नहीं दे रही थी।

हम जब हॉल के पास पहुंचे तब तक एक युवक कहीं से निकलकर पास आ खड़ा हुआ और संकेत से यह बताकर, कि यही गोपेश्वर जी महाराज हैं, एक तरफ निकल गया; मैं और एमिस जब अन्दर हॉल में घुसे, तो लड़कियां जरूर सकपका गईं, दो-तीन ने अपने वस्त्र भी ठीक करने की चेष्टा की, थोड़ी सी अलग भी हट कर बैठीं, परन्तु स्वामीं जी उसी निर्विकार भाव से लेटे रहे, उनके चेहरे पर न तो झेंप थी और न झिझक, न काम चिन्ह थे और न परेशानी, चेहरा उसी प्रकार से निर्विकार था।

उनके संयम और निर्विकार चेहरे से हम प्रभावित हुए। मैं और एमिस उनके पास ही व्याघ्र चर्म से कुछ हटकर बैठ गये, करीब पन्द्रह मिनट तक तो उन्होंने हमारी ओर ताका भी नहीं, फिर करवट लेकर हमारी तरफ देखा और भेदिनी दृष्टि से देखते हुए बोले – 'कहो! कहां से आए हो?'

हमने संक्षेप में अपने आने का मंतव्य बताया और यह भी बताया, कि हरिद्वार में आपके बारे में क्या कुछ सुन चुके हैं साथ ही यह भी, कि हम भारत की इस लुप्तप्राय विद्या को देखना और समझना चाहते हैं।

स्वामी जी चित्त लेट गये, उनकी आंखें छत से लगी हुई थीं, सीधे लेटे थे, दो-तीन लड़कियां उनके पांव दबाने लग गई थीं, उनका दाहिना हाथ सीने पर था, बांया हाथ जमीन पर पड़ा था, एक प्रौढ़ सी महिला ने उस हाथ को अपनी गोद में रख कर धीरे-धीरे सहलाना और दबाना शुरू कर दिया था।

थोड़े समय बाद स्वामी जी बोले – 'तंत्र-मंत्र इस भारत से समाप्त नहीं हो गये हैं, जानकार हैं, पर सब साधारण रूप में हैं' . . .

फिर एकाएक घूरते हुए बोले – 'पर तुम क्यों जानना चाहते हो? क्या जानना चाहते हो?'

मैंने संक्षेप में अपने मन की छटपहाट उन्हें बताई, वे क्षणिक मुस्करा भर दिये।

फिर कुछ समय बाद बोले – 'तुम न्यूयार्क से आये हो न?'

एमिस ने 'हां' भरी।

उन्होंने दाहिना हाथ ऊपर उठाया, बोले – 'मेरे हाथ में क्या है?'

मैंने ध्यानपूर्वक देखा, बोला – 'कुछ भी तो नहीं।'

उन्होंने हाथ हवा में घुमाया, उनके हाथ में अनार था, वह अनार उन्होंने एमिस की गोद में उछाल दिया।

मैंने कई एक किस्से सुन रखे थे, साईं बाबा के बारे में भी काफी कुछ पढ़ा था, सुना था – पर ये साधु तो लगभग निर्वस्त्र थे और मेरे सामने ही हवा में से अनार निकाल कर फेंका था, हिप्नोटाइज्ड मैं हुआ नहीं था, क्योंकि हिप्नोटिज्म के बारे में मैं खुद जानता था, निश्चय ही स्वामीजी के पास कुछ सिद्धि अवश्य है।

वे बोले – 'खाओ, खाओ! अनार स्वादिष्ट और मीठा है।'

मैंने और एमिस ने वहीं बैठे-बैठे अनार के दाने निकाल कर खा लिए, वास्तव में ही अनार मीठा था।

शाम हो जाने पर मैं और एमिस स्वर्गाश्रम पर स्थित धर्मशाला में जाकर सो गए।

लगभग पन्द्रह दिनों तक हम नित्य स्वामी जी के यहां जाते रहे, स्त्रियां इसी प्रकार उन्हें घेरे बैठी रहतीं, इन पन्द्रह दिनों में अत्यधिक आग्रह पर उन्होंने कुछ विशेष बताया नहीं, हां दो बार हवा में से आम निकाल कर जरूर चूसने को दिये थे।

इसके अलावा किसी सिद्धि के बारे में चर्चा चलने पर वे चुप हो जाते, एक बार वार्तालाप में स्वामी जी के गुरु के बारे में चर्चा चलने पर उनके मुंह से मात्र 'नारायण' शब्द ही निकला था और इसके बाद ही उन्होंने बातों का रुख दूसरी ओर मोड़ दिया था।

एक बार फिर एक दिन आग्रह करने पर ज्ञात हुआ, कि उन्होंने यह विद्या अपने गुरुजी से सीखी है, जिनका नाम 'नारायण' है और जो रेतीले राजस्थान के शहर जोधपुर में रहते हैं, पूरा अता-पता फिर भी मालूम नहीं हो सका, पर जो संकेत मिल गया था, वह पर्याप्त था, जोधपुर कोई बड़ा शहर नहीं होगा — और होगा भी तो ढूंढ़ निकालेंगे।

पन्द्रह दिनों की अवधि में मेरी अनुभवी आंखों ने यह जान लिया था, कि स्वामी जी को केवल यही सिद्धि प्राप्त है, कि हवा में से मनचाही वस्तुएं प्राप्त कर लेते हैं और भक्तों में बांट देते हैं, केवल इसी सिद्धि को वे भुनाकर जीवन-यापन कर रहे हैं।

हमने अब वहां अधिक ठहरना उचित नहीं समझा, अभी तक हमें वास्तविक योगी या तंत्र-मंत्र के निष्णात व्यक्ति का साक्षात्कार नहीं हुआ था और इसीलिए मन में छटपटाहट थी, पर छटपटाहट के इन क्षणों में एमिस की जबान पर हमेशा यही रहता —

जिन ढूंढा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ
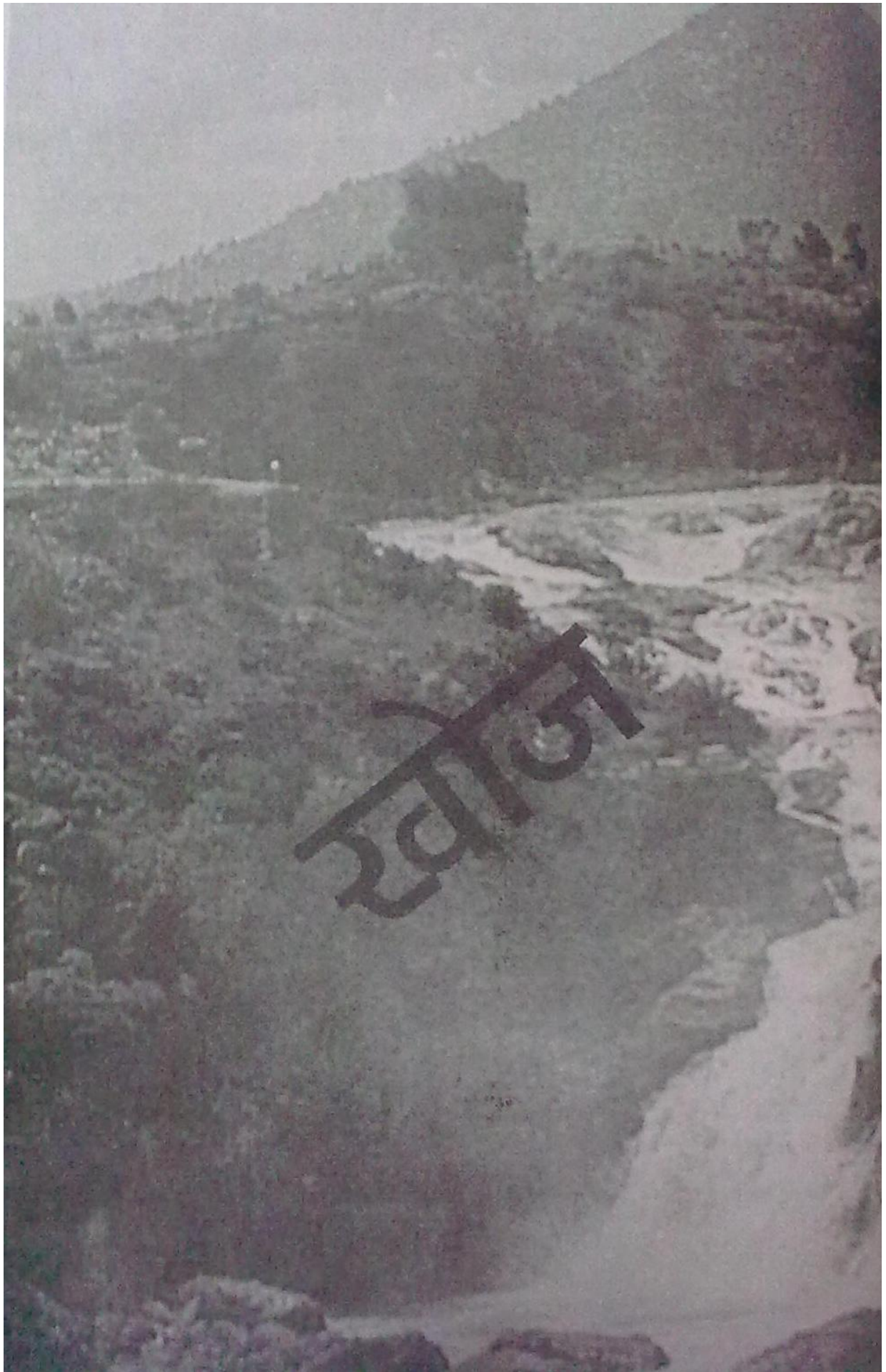
खोज एक शाश्वत

और निरन्तर गतिशील क्रिया है,

जो अनन्त युगों से चली आ रही है

और आगे भी अनन्त युगों तक चलती रहेगी।

इस विश्व में जो भी पैदा हुआ है,

उसे किसी न किसी की खोज अवश्य है,

कोई धन के अजस्र स्रोत को खोजता है,

तो कोई धन प्राप्त होने पर

सुख के विभिन्न उपायों को

— यह तो सांसारिक व्यक्तियों की बात है,

अब यदि थोड़ा ऋषि,

मुनि और योगियों की बात करें,

तो वे लोग भी युगों से खोज कर रहे हैं

— अपने आत्म की,

अपने आन्तरिक आह्लाद की

और अपने स्व को ब्रह्म में

विलीन कर देने की क्रिया . . .
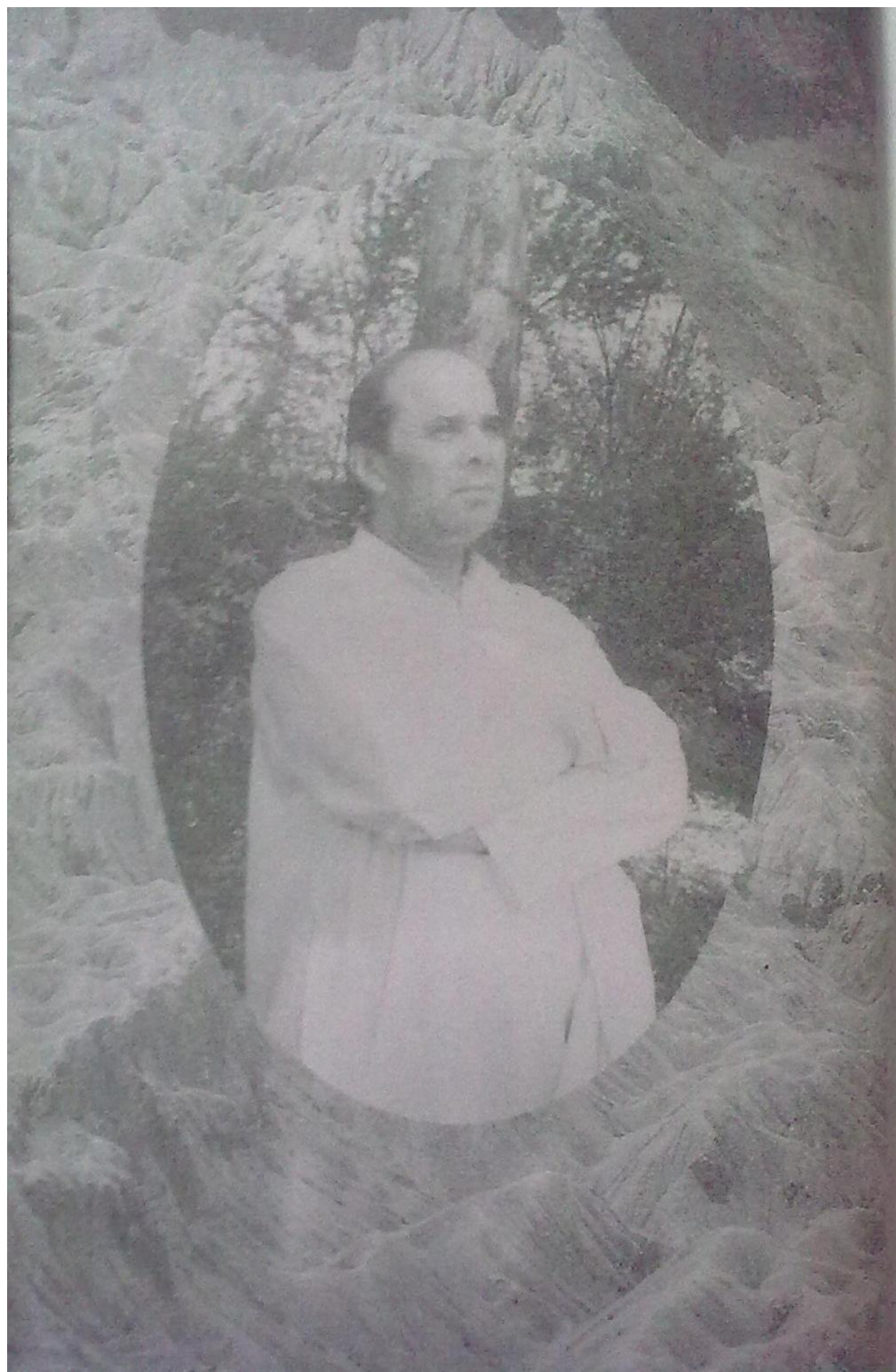
डॉ0 नारायण दत्त श्रीमाली का नाम एक घुमक्कड़ साधु से भी सुना था, देहरादून से आगे मसूरी रोड पर जब मैं और एमिस थक कर एक बड़ी सी पत्थर की चट्टान पर सुस्ताने के लिए बैठे, तो अचानक एक साधु से भेंट हो गई थी, जो कि काफी वृद्ध थे पर जिनके चेहरे पर तेजस्विता थी; यद्यपि उस साधु ने कभी डॉ0 श्रीमाली के दर्शन तो नहीं किये थे, पर उसने कई श्रेष्ठ साधकों तथा मंत्र द्रष्टाओं से श्रीमाली जी का नाम सुना जरूर था। उसने यह भी सुना था, कि उनका मूल निवास स्थान जोधपुर है तथा डॉ0 श्रीमाली ज्योतिष तथा तंत्र-मंत्र के भण्डार हैं, सिद्धियों का अक्षय स्रोत उनके पास हैं, परन्तु फिर भी साधारण गृहस्थ के रूप में रहते हैं, अत्यन्त सरल तरीके से जीवन यापन करते हैं, आडम्बर और प्रदर्शन तो उनसे कोसों दूर हैं, इस प्रकार से कपड़ों में लिपटा हुआ दैदीप्यमान रत्न हैं, जो स्वयं ही छिपा रहना चाहता है, अनुभवी और पारखी आंखें ही उसे पहिचान पाती हैं।

अन्त में अपनी बात को समाप्त करते हुए स्वामी जी ने कहा –

'यदि वास्तव में ही सही व्यक्ति से आप मिलना चाहते हैं, तो आपको वहीं जाना चाहिए, आपकी मानसिक तृप्ति, आपकी इच्छाओं की पूर्ति वहीं हो सकेगी।'

स्वामी जी तो अपने रास्ते चले गए, पर मेरे लिए पीछे प्रसन्नता और उत्सुकता का स्रोत छोड़ गये, मैंने जल्दी से जल्दी श्रीमाली जी के दर्शन करने की ठान ली, एमिस भी प्रसन्नता और हर्ष से भर गई थी, ऐसा लगने लगा था जैसे हम मनचाही मंजिल के करीब पहुंच गये हों।

इसके साथ ही साथ मेरी यह धारणा भी पुष्ट हो गई, कि भारत अभी तक खाली नहीं हुआ है, सिद्धियों का अक्षय भण्डार यदि अभी तक भी कहीं पर है, तो वह भारत में ही है, अभी भी भारत में ऐसे कई साधु-सन्त और ऋषि हैं, जो साधारण रूप में विचरण करते हैं, पर जिनके पास शक्तियों का असीम भंडार है, मैं ऐसे ही किसी व्यक्तित्व के सम्पर्क में आना चाहता था, जो इन सिद्धियों का स्वामी हो, पर साथ ही साथ विनम्र भी हो, जो तंत्र-मंत्र, ज्योतिष, चिकित्सा आदि भारतीय लुप्त विद्याओं का संजीवक हों, पर हमारे बीच के ही हों, जिनके साथ बैठ सकें, सुन सकें, कह सकें, सीख सकें। मैं ऐसे हिमालय का प्रशंसक नहीं हूं, जिसे दूर से ही नमन किया जा सके, पर ऐसी गंगा का हिमायती हूं, जिसमें डुबकियां लगा सकूं, जी भर कर नहा सकूं, तृप्त हो सकूं।

उस रात मैं और एमिस सुख भरी नींद सोये, दूसरे दिन ही देहरादून से दिल्ली पहुंच गये, यहीं से हमें राजस्थान की यात्रा करनी थी, अपने इच्छित स्थान पर पहुंचना था।

दिल्ली हम तीन-चार दिन रहे और राजस्थान ब्यूरो से, जितनी भी और जानकारी मिल सकती थी, प्राप्त की। दिल्ली से जोधपुर पहुंचने के दो रास्ते हैं, एक तो रतनगढ़, चुरू होकर तथा दूसरा जयपुर होकर, पर दूसरा रास्ता लंबा और थका देने वाला है, पहला रास्ता सीधा है तथा ट्रेन से मात्र सोलह घंटों का रास्ता है, हमने उसी रास्ते से जोधपुर जाने का निश्चय किया।

पुरानी दिल्ली से रेल शाम को आठ बजे के लगभग रवाना होती है, जो कि दूसरे दिन बारह बजे के लगभग जोधपुर पहुंच जाती है, यों दिल्ली से वायुयान द्वारा भी तीन घंटों में जोधपुर पहुंचा जा सकता है, परन्तु हमने ट्रेन से ही सफर करना ज्यादा उचित समझा।

मेरे जीवन की वह बड़ी खुशनुमा प्रातः थी, जब मैंने एमिस के साथ अपने आपको जोधपुर स्टेशन पर पाया, छोटा सा और आम भारतीय स्टेशनों की तरह ही यह स्टेशन है। स्टेशन के बाहर ही सामने की ओर कुछ होटल हैं, उनमें से एक होटल में मैं टिक गया। यह अनुभव जरूर हुआ, कि यहां होटल महंगे नहीं हैं और जीवन-स्तर भी व्ययशील नहीं है, कम व्यय में शालीनता के साथ जीवन-यापन किया जा सकता है।

होटल में हम ठहरे तो अवश्य, पर हम जल्दी से जल्दी श्रीमाली जी से मिलना चाहते थे, मन में यह भी आशंका थी, कि मिलेंगे भी या नहीं? किस प्रकार का व्यवहार करेंगे, ये योगी और साधु बड़े ही अक्खड़ और धुनी होते हैं, धुन में आ जायें तो निहाल कर दें, और गुस्से में आ जायें तो पास भी फटकने न दें – परन्तु हम हिम्मत हारने वाले जीव नहीं थे, यह तो पक्का निश्चय था, कि जब यहां तक आये हैं, तो मिलकर जायेंगे ही, चाहे कुछ भी करना पड़े।

मैं नीचे आकर पास के एक छोटे से होटल में चाय पीने बैठ गया और फिर काउंटर पर जाकर मैंने पूछा – 'क्या आप डॉ0 नारायण दत्त श्रीमाली को जानते हैं? वे आपके जोधपुर में ही रहते हैं।'

वह परिचित था, नाम सुनते ही आत्म-विभोर हो गया, बोला – 'पंडितजी हाईकोर्ट कॉलोनी में रहते हैं, उसे 'श्रीमाली कॉलोनी' भी कहते हैं, वे वंदनीय हैं, हमारे शहर के गौरव हैं।'

बाद में तो मैंने तीन-चार लोगों से अलग-अलग पूछा, सभी परिचित थे, ऐसा लगा जोधपुर का प्रत्येक समझदार व्यक्ति उस विभूति से परिचित है, सभी के मन में उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव था।

शाम को मैं और एमिस मण्डोर उद्यान घूमने गये, जो कि जोधपुर से लगभग चार-पांच किलोमीटर दूर है, अत्यन्त ही शांत और रमणीय स्थान है, यहां हम दो-तीन घंटे के करीब रहे, उद्यान में ही एक साधु से भेंट हो गई, जो पार्क में जन-शून्य से स्थान पर एकांत में अकेला बैठा था।

मैंने उन्हें नमस्कार किया, तो उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में 'स्वस्ति' कहा, बातचीत के दौरान पता चला, कि वे साधु भी पण्डित श्री नारायणदत्त जी से ही मिलने आये हैं और लगभग बीस-पच्चीस दिनों से जोधपुर में ही हैं, उनसे डॉ0 नारायणदत्त जी के बारे में काफी कुछ जानकारी मिली, जो कि आगे के समय में काफ़ी काम आई।

उन साधु महोदय से ही पता चला, कि वे चित्रकूट के रहने वाले हैं, और स्वामी जी से कुछ सीखने आये हैं, मैंने यह भी देखा, कि नारायण दत्त जी को कोई डॉक्टर साहब, कोई पण्डित जी, तो कोई नारायणदत्त, कोई बाबा या फिर गुरु जी भी कह कर पुकारता है।

मैंने पूछा – 'कोई सफलता मिली?'

बोले – 'अभी तक तो नहीं, पर मुझे विश्वास है, कि उस रत्नखान में से कुछ रत्न ढूंढ़ निकालूंगा।'

उन साधु महोदय से श्रीमाली जी के बारे में जितनी भी और जो भी जानकारी मिल सकती थी, प्राप्त की; मैं विशेष रूप से उनकी रुचियों, उनके स्वभाव, व्यवहार आदि के बारे में अग्रिम रूप से ही जान लेना चाहता था, जिससे मैं पहली मुलाकात में असफल न होऊं।

दूसरे दिन प्रातः ही पण्डित जी से मिलने का पक्का निश्चय कर लिया।

उस दिन प्रातः सुनहरा था, मुस्कराती हुई धूप खिल आई थी, मैं और एमिस स्नान कर जल्दी से तैयार हो गये थे। मुझे पता चला, कि आठ बजे के लगभग पण्डित जी अपनी नित्य पूजा से निवृत्त हो जाते हैं, मैं उसी समय उनसे मिलने का निश्चय कर चुका था, जिससे ज्यों ही वे उठें, उनसे मिलने का समय प्राप्त कर भेंट की जा सके।

स्टेशन से पण्डित जी का निवास स्थान लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर था, हमने पैदल ही जाने का विचार किया, जिससे प्रात:कालीन भ्रमण भी हो सकेगा और उनसे सही समय पर मिलना भी हो सकेगा। मैं और एमिस होटल से लगभग सात बजे ही निकल पड़े।

हाईकोर्ट कॉलोनी पहुंचे तो सड़के के किनारे छोटे-छोटे मकान बने हुए देखे, इनमें से एक छोटा-सा मकान डॉ0 श्रीमाली का था। मन को बड़ा आश्चर्य हुआ, कि क्या इस छोटे से मकान में इतना बड़ा व्यक्तित्व रहता है; फिर विचार आया — यह जो व्यक्तित्व है, वह भारत का अमूल्य रत्न है और जिसने तपस्या के माध्यम से जन्म-मरण के भय से मुक्ति पा ली है, उसके लिए क्या छोटा मकान और क्या बड़ा? यह देश तो चाणक्य, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि की जन्म-भूमि है; जिनके सामने बड़े-बड़े महाराजा सिर झुकाते थे, जो ज्ञान-विज्ञान ऋद्धियों-सिद्धियों के अक्षय भंडार थे, यदि उसी परंपरा में यह छोटा-सा मकान है, तो इसमें अनहोनी क्या है?

मैंने दरवाजे पर पहुंचकर हौले से दस्तक दी, गौर वर्ण के एक युवक ने दरवाजा खोला, वह बोला — 'आप ही अमेरिका से आये हैं न, पंडितजी से मिलना है न?'

मैंने चकित से जवाब दिया — 'हां! पर आपको कैसे पता चला, कि मैं अमेरिका से आया हूं?'

— 'गुरुजी ने कहा है, आप और मिसेज एमिस अंदर बैठें, पूजा पर बैठने से पहले ही मुझे आपके लिए आज्ञा मिल चुकी थी, पंडितजी पूजा से उठने ही वाले हैं।'

आश्चर्य चकित रह गया मैं और चित्रलिखी सी अवाक् रह गई एमिस . . . एमिस! पंडितजी को यह नाम कैसे पता चला, और कैसे ज्ञात हुआ, कि हम आज अभी उनसे मिलने आने वाले हैं . . . और फिर पूजा पर बैठने से पूर्व ही ये सारी हिदायतें!

मैं और एमिस आश्चर्य चकित से कमरे में जाकर बैठ गये।

छोटा-सा सादा कमरा, जैसा कि आम गृहस्थ व्यक्ति का घर होता

है, न किसी प्रकार की कोई तड़क-भड़क, न चमक-दमक, दो-तीन ज्योतिष से संबंधित चित्र लगे हुए, कमरे की सादगी ने हमारा मन मोह लिया।

करीब पंद्रह-बीस मिनट बीते होंगे, कि अचानक कमरे में प्रकाश-सा हुआ, धीरे से दरवाजा खुला और सौम्यमूर्ति ने कमरे में प्रवेश किया, यंत्र चालित से हम दोनों उठ खड़े हुए, भारतीय पद्धति के अनुसार उनके अभिवादन के लिए हाथ जुड़ गये।

लंबा और पुष्ट कद, गौर वर्ण, सुदृढ़ स्कंध, उन्नत नासिका और करुण हास्य बिखरेती दैदीप्यमान दो आंखें, धोती-कुरते में वेष्टित जो व्यक्तित्व मेरे सामने था, वही डॉ0 श्रीमाली थे, सारा शरीर करुणामय था, ऐसा लग रहा था जैसे विश्व-स्नेह का साकार बिंब मेरे सामने खड़ा है, उनके शरीर से नैसर्गिक सुगंध सी आ रही थी, जो पूरे कमरे में महक रही थी, चेहरे की ओजस्विता से प्रकाश शत गुना भाषित हो रहा था, ऐसा लग रहा था जैसे यह व्यक्तित्व साधारण न होकर विशिष्ट है, निश्चय ही ऐसा व्यक्तित्व असीम सिद्धियों का स्वामी हो सकता है।

उनके चेहरे से अभी भी करुणा, दया और स्नेह बरस रहा था, हाथ के संकेत से हमें बैठ जाने को कहा, हम दोनों कुर्सियों पर बैठ गये, पंडितजी टेबल के उस पार कुर्सी पर बैठ गये, बोल – 'स्वास्थ्य ठीक है न पोलर!'

मुझे नाम से पुकारा गया था, तो क्या पंडितजी के पास कोई ऐसी सिद्धि है जिसके द्वारा वे हमारा नाम ज्ञात कर लेते हैं, पर मैं जिस वातावरण में पला था वह तर्कप्रधान था, उसमें भावना का मूल्य कम था, एकदम से मैं कोई बात मानने को तैयार न था, मन ने तर्क दिया—हो सकता है, कल जो मंडोर में साधु मिले थे, उन्होंने बता दिया होगा, पर उनको तो हमने अपना नाम नहीं बताया था—शायद होटल के रजिस्टर से हमारे नाम ज्ञात कर लिये हों?

– 'क्या बात है पोलर! मन-ही-मन बहुत अधिक तर्क-वितर्क कर रहे हो—निश्चिंत रहो, न तो मुझे मंडोर में मिले साधु ने कुछ बताया है और

न ही होटल के रजिस्टर से आपके नाम ज्ञात करवाये हैं' . . . और वे मंद से मुस्करा दिये।

अरेऽरेऽरे . . . मैं मन-ही-मन चकित, तड़ित और विजड़ित हो उठा, निश्चय ही सामने बैठा हुआ व्यक्तित्व साधारण नहीं है, मन के गोपनीय रहस्यों को यह उसी तरह पढ़ सकता है जैसे एक सरल पुस्तक पढ़ना हो, ऐसे व्यक्तित्व के बारे में संदेह करना व्यर्थ ही है।

पर मेरा स्वभाव इस बात की स्वीकृति नहीं दे रहा था, मैं जिस वातावरण में पला था, वह तर्क प्रधान है, जहां पग-पग पर छल, धोखा, कपट और झूठ है, जहां पर स्वार्थ के लिए कुछ भी किया जा सकता है, मेरा पालन ऐसे ही वातावरण में तो हुआ, अतः संशय मेरे खून में मिला हुआ था।

मैंने नजरें ऊंची उठाईं, डॉ0 श्रीमाली मुझे देख रहे थे और मुस्करा रहे थे, मैंने कहा – 'अगर आप अन्यथा न समझें और क्षमा करें तो एक बात पूछूं?'

'तुम नहीं पोलर! तुम्हारा संशय और भ्रम प्रश्न पूछना चाहता है, तुम जिस वातावरण और परिवेश में पले हो वह प्रश्न पूछना चाहता है; तुम्हारे मन का वहम तुम्हें प्रश्न पूछने के लिये बाध्य कर रहा है' – फिर कुछ रुककर बोले – 'और मैं यह भी बता दूं कि तुम क्या पूछना चाहते हो?'

एमिस और मेरी नजरें पंडितजी की नजरों से एक साथ जा टकराईं।

पंडितजी धीरे-धीरे गंभीर स्वर में बोले – 'तुम केवल मेरी परीक्षा लेने के उद्देश्य से ऐसा प्रश्न पूछना चाहते हो, जो भारत में घटित नहीं हुआ हो, तुम्हारे मन में प्रश्न है, कि न्यूयार्क से रवाना होते समय हवाई अड्डे पर कौन-कौन स्वजन आप लोगों को पहुंचाने आये थे?'

मैं आंखे फाड़े चकित-सा उनका मुंह ताक रहा था।

पंडितजी बोले – 'और इसका उत्तर भी सुन लो, तुम्हें हवाई अड्डे पर पहुंचाने मात्र तुम्हारी बहिन और पिताजी ही आये थे, मां की तबियत

खराब होने से वह हवाई अड्डे पर नहीं आ पाई थीं।'

एकदम से चारों तरफ घिरा कोहरा छंट गया, मेरी आंखों के आगे जो भ्रम का पर्दा पड़ा था एक क्षण में ही हट गया और मैं भावना विह्वल होकर पंडित जी के चरणों में झुक गया, मेरी पीठ पर स्नेह का, सान्त्वना का, मधुरता का हाथ फिर रहा था।

यह थी मेरी और एमिस की पंडितजी से पहली भेंट।

मैंने धीरे-धीरे अपना मन्तव्य बता दिया, उस पहली भेंट में ही मैंने न्यूयार्क से आने का मूल कारण भी उन्हें बता दिया और यह भी बता दिया, कि न्यूयार्क में पिछला एक वर्ष कितने आलोड़न-विलोड़न के साथ बिताया है, भारत से मेरा हार्दिक सम्बन्ध है, नैसर्गिक सम्बन्ध है, मैं अगर भारत न आता तो मैं अपने आपको कभी भी क्षमा नहीं कर पाता। मुझे अपने जीवन में न धन की लालसा है, न दौलत की इच्छा, मैं केवल यह देखना चाहता हूं, कि –

– क्या भारत अभी भी जिंदा है?

– क्या भारत के पास जो अमूल्य थाती थी वह सुरक्षित है?

– क्या भारत अभी भी विश्व को कुछ देने में सक्षम है?

– इन सभी प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए ही भारत आया हूं – और मुझे विश्वास है, कि निराश होकर मुझे वापिस अपने देश लौटना नहीं पड़ेगा।

'तुम तो बोल ही नहीं रही हो एमिस!' . . . अब स्वामी जी एमिस की तरफ उन्मुख हुए – 'काफी परेशानियां उठानी पड़ी हैं न भारत में!'

एमिस ने धीरे-से सिर ऊपर उठाया।

'दिल्ली–हरिद्वार–ऋषिकेश–देहरादून–मसूरी घुमा-घुमा कर थका दिया है एमिस को–और फिर यह गर्मी! परेशान तो नहीं हो न!'

– 'कल तक तो हम दोनों बहुत परेशान और व्याकुल से ही थे, मन में एक अनिश्चिन्तता और व्याकुलता थी, पर सच कह रही हूं आज

अब जबकि आपके सामने बैठी हूं अपने आपको काफी हल्का अनुभव कर रही हूं, ऐसा लग रहा है जैसे मन में किसी प्रकार की कोई चिंता या परेशानी थी ही नहीं, सचमुच ऐसा अनुभव हो रहा है जैसे मन ने अपनी मंजिल पा ली हो।'

डॉ0 श्रीमाली हौले से मुस्करा दिये।

अब तक अंदर से हमारे लिए कॉफी और उनके लिए चाय आ गई थी, बोले – 'आप तो कॉफी लेते हैं, चाय नहीं लेते न! इसलिए आपके लिए कॉफी बनवाई है।'

कितना प्रेम और स्नेह है पंडित जी में और कितनी सूक्ष्म और भेदनी दृष्टि है उनके पास, यह मैंने उस समय जाना, सचमुच उन्हें सब कुछ चीन्ह जाता है, मेरी और एमिस की रुचि तक का उन्होंने पता लगा लिया था।

'बाबा! एक बात पूछूं, बुरा न मानें तो!' – एमिस ने मुस्कराकर पूछा।

– 'कहो! कहो!! बुरा मानने की क्या बात है?'

– 'अब तक जो कुछ हमने देखा और समझा, उसके अनुसार आपके पास कोई-न-कोई सिद्धि अवश्य है जिससे आप दूसरों के मन की बात जान लेते हैं, यही नहीं अपितु बीती हुई उन घटनाओं को भी उसी प्रकार देख लेते हैं, जैसे कि आपकी आंखों के सामने ही घटित हुई हों, इसी साधना या सिद्धि के माध्यम से आपने न्यूयार्क हवाई अड्डे की बात जान ली थी, पर आप इतने साधारण तरीके से और इतने साधारण मकान में रहते हैं, कि कोई विश्वास नहीं कर पाता, कि साधारण-सा दिखने वाला व्यक्ति, इस साधारण से मकान में रहने वाला व्यक्तित्व इतना ऊंचा और विशिष्ट भी हो सकता है?'

पंडित जी हंस पड़े, बोले – 'तुम जिस वातावरण में पली हो, वह मात्र चमक-दमक से ही पूर्ण है, अन्दर से खोखला है, तुम्हारी सभ्यता

ने बाह्य आवरण को ही देखा; भारतीय संस्कृति ने कभी भी बाह्य रूप को मान्यता नहीं दी, देह का गर्व नहीं किया अपितु मन की पवित्रता को महत्त्व दिया। पश्चिम ने शरीर को ही सब कुछ समझा, जबकि पूर्व ने आत्मा को सर्वाधिक श्रेय दिया और इसीलिए तुम उसी वातावरण में पली होने के कारण इस मकान को परखने की चेष्टा कर रही हो, मेरे शरीर को देख रही हो और मकान की सामान्यता तथा मेरे शरीर की साधारणता को महत्त्व दे रही हो' . . .

फिर कुछ रुक कर बोले – 'यदि तुम डॉ0 श्रीमाली को ही मिलने आई हो तो फिर वह इस छोटे से मकान में बैठा है या फाइव स्टार होटल में . . . कोई महत्त्व नहीं रखता, उसने रेशमी चमकीले वस्त्र पहन रखे हैं या साधारण धोती-कुरता . . . इससे कोई फर्क नहीं पड़ता – तुम भारत में आई हो, चर्म-चक्षुओं से नहीं, मन की आंखों से देखो–परखो–समझने का प्रयत्न करो।'

एमिस की आंखों के आगे से धुंध के बादल छंट रहे थे, वह देख रही थी, कि कमरा भले ही छोटा हो, पर इस कमरे में जो व्यक्तित्व है, वह बहुत बड़ा है, असाधारण है, अप्रतिम है, ज्ञान का उसमें अक्षय भंडार है, सबसे बड़ी बात यह है, कि उसमें विश्लेषण करने की अद्‌भुत शक्ति है, बात को इतने सहज और सरल तरीके से सामने रखता है, कि सुनने वाला मंत्रमुग्ध हो जाता है।

– 'आप ठीक कह रहे हैं बाबा! मैं जिस सभ्यता और वातावरण में पला हूं–अविश्वास और सन्देह उसकी मूल धुरी है, इसीलिए आपके ज्ञान और आपकी प्रतिभा पर भी सन्देह कर बैठा था और यही स्थिति एमिस की है, यह भी उसी वातावरण में पली है, जिस वातावरण में मैं बड़ा हुआ हूं, इसीलिये कुछ असंगत बात या व्यवहार भी हमारी तरफ से हो जाए तो आप अन्यथा न लें।'

बाबा हंस पड़े, कितनी निश्छल और सरस हंसी है बाबा की! ऐसा लगता है, जैसे कोई झरना बह रहा हो–कल कल . . . कल कल . . .

कल कल . . .कल कल . . .

वातावरण सामान्य सा हो आया था, मैंने सावधानी के साथ बात आगे बढ़ाई, पूछा – 'मैं पिछले दो महीनों से, भारत में भटक रहा हूं, मात्र ज्योतिष की सत्यता और प्रामाणिकता परखने के लिए, तांत्रिक और मांत्रिक साधनाओं की सत्यता देखने के लिए – मैं देखना और समझना चाहता था, कि 'केन्वल्ट' ने भारत की तंत्र-मंत्र साधनाओं का जो खाका खींचा है उसमें कुछ प्रामाणिकता भी है या महज कपोल कल्पना ही है।'

मैं थोड़ा चुप हुआ, तो बाबा पूछ बैठे – 'क्या अनुभव किया तुमने ?'

'अभी तक मुझे कोई पूर्ण और प्रामाणिक सिद्धि नहीं मिली, किसी के पास एक-आध साधना सिद्धि है भी, तो वह मात्र वहीं तक सीमित है और उसी बलबूते पर वह खा-पी रहा है, अभी तक सिद्धियों का भण्डार मैंने अनुभव नहीं किया – ऋषिकेश में भी एक साधु के दर्शन हुए थे, पर वे मात्र कोई वस्तु ही मंगा सकते हैं, इसके अलावा उनके पास कुछ है भी नहीं, ऐसा हमारा अनुभव है या उन्होंने हमें इससे ज्यादा बताना उचित नहीं समझा।'

'तुम गोपेश्वर की बात कर रहे हो न!'

'हां, स्वामीजी!'

बाबा हौले से मुस्करा दिये, कुछ कहा नहीं।

. . . और मैंने यही समय चोट करने का उपयुक्त समझा, यद्यपि यह मेरी धृष्टता थी, पर मेरी बुद्धि बार-बार मुझे उकसा रही थी, यद्यपि बाद में मैं इस मूर्खता के लिए कई बार पछताया, अपने आपको फटकारा भी; पर तब तक तो तीर मेरे हाथ से निकल ही चुका था।

मैंने एकदम से कह दिया – 'बाबा! . . . शायद यहां से भी मुझे निराशा ही हाथ लगेगी, क्योंकि ऐसा लग रहा है, कि आपके पास भी भूतकालीन बातों को जान लेने के अलावा अन्य कोई सिद्धि नहीं है।'

बाबा एकदम से तिलमिला उठे, उनका चेहरा एक क्षण के लिए मात्र एक क्षण के लिए तिलमिला उठा, पर अपने आप पर बाबा का जबरदस्त नियंत्रण है; दूसरे ही क्षण उन्होंने अपने आपको संभाल लिया, स्वयं को पूरी तरह से नियंत्रित कर लिया, और मुस्करा कर बोले – 'इस बात से निश्चिन्त रहो पोलर! किसी के उकसाने से मैं उत्तेजित नहीं होता और न उत्तेजित होकर वह सबकुछ कर लेता हूं जो मैं नहीं चाहता। अगर तुम्हारी मंशा यह है, कि मैं तुम्हारे कहने से उत्तेजित होकर कुछ और चमत्कार दिखाऊंगा, तो यह तुम्हारा भ्रम है। मैं चमत्कारबाजी में विश्वास नहीं करता, शक्तियां और सिद्धियां चमत्कारबाजी में आस्था नहीं रखतीं।'

फिर कुछ रुक कर बोले – 'मुझे चमत्कार दिखाकर करना क्या है, न तो मुझे चेले-चपाटी की भीड़ एकत्र करनी है और न मुझे प्रदर्शन कर अपने आपको पुजवाना है, मैं सीधा-सादा इन्सान हूं और सीधा-सादा ही रहना चाहता हूं, मैं अपने आपको प्रदर्शन की वस्तु नहीं बनाना चाहता। जो मुझे जानना चाहेंगे वे 'नारायणदत्त श्रीमाली' के नाम से ही मुझे जान जायेंगे, चमत्कार और हल्के प्रदर्शन से मैं अपने आपको चमकाना नहीं चाहता।'

कहते-कहते उनका स्वर उत्तेजित हो आया, पर फिर एकाएक स्वर को संयत करते हुए बोले – 'मैं जानता हूं मेरी बात से तुम्हारी आस्था को धक्का लगेगा, तुम्हारे मन में मेरे प्रति जो वहम है वह और डरावना बनकर तुम्हें डस लेगा' .....

फिर एकाएक बोले – 'बोलो, तुम क्या देखना चाहते हो?'

मैं समझ गया था, कि मैंने गलती कर ली है, मुझे इस प्रकार पहली भेंट में ही उत्तेजक बात नहीं कहनी चाहिये थी, पर जो होना था सो हो गया और अब प्रस्ताव श्रीमाली जी की तरफ से था, बोला – 'मैं क्या पूछूं और क्या देखना चाहूं, आप जैसा भी उचित समझें।'

पंडितजी हंस दिये – 'यदि मैं कुछ नहीं बताता हूं, तो तुम्हारा मेरे प्रति सन्देह बना रहेगा और यदि कुछ बता दिया तो तुम कहोगे, कि बस

ये दो चीजें ही पंडितजी को आती हैं और इससे साधनाओं व सिद्धियों के बारे में भ्रम रहेगा, इसीलिए मैंने कहा है, कि तुम जो कहोगे वही करूंगा, पर भूल कर भी फिर ऐसा प्रस्ताव मत रखना।'

एमिस बातों में रुचि ले रही थी, बीच में बोल पड़ी – 'स्वामीजी! क्या मुझे कुछ कहने का हक है?'

– 'हां-हां।'

– 'बाबा! मेरी डायरी मेरे घर न्यूयार्क में छूट गई है, जिसमें मैं अपनी दैनिकचर्या लिखती रही हूं, उसके तो कई पृष्ठ मेरे हाथ से भरे हुए हैं, क्या वह मैं यहां बैठे-बैठे आपके द्वारा प्राप्त कर सकती हूं?'

बाबा मुस्करा दिये, बोले – 'सोच लो, इससे भी कोई कठिन काम तुमको लग रहा हो, तो अभी कह दो, बाद में मत कहना।'

एमिस ने जवाब दिया – 'यह काम क्या सरल है, कहां न्यूयार्क और कहां जोधपुर?'

बाबा दो मिनट आंखें बन्द किये बैठे रहे, फिर धीरे से आंख खोलकर बोले – 'डायरी हरी जिल्द वाली है न!'

एमिस आश्चर्यपूर्ण स्वर में बोली – 'हां-हां!'

बाबा के चेहरे पर उसी प्रकार मुस्कराहट विद्यमान थी। अन्दर से एक ऊनी कम्बल मंगाया और हमारे सामने ही ओढ़ लिया, एक मिनट के बाद उस कम्बल से अपना मुंह ढंक लिया, अन्दर से कुछ हल्की सी पिप्-पिप् की ध्वनि आ रही थी।

हम दोनों चकित भाव से देख रहे थे, मुश्किल से दो मिनट ही बीते होंगे, कि बाबा ने सिर से कम्बल हटा लिया और फिर पूरा उतार कर एक तरफ रख दिया, उनके दाहिने हाथ में एमिस की व्यक्तिगत डायरी मौजूद थी!

आश्चर्य ..... महाआश्चर्य .... एमिस की तो प्रसन्नता के मारे चीख सी निकल गई, कहां न्यूयार्क और कहां जोधपुर .... और फिर मात्र

दो मिनट में !!

एमिस ने डायरी अपने हाथ में लेकर उलटी-पलटी – वही डायरी जो कि न्यूयार्क में अपनी व्यक्तिगत अलमारी में भूल आई थी!!

हम दोनों की आंखों के आगे से पर्दा पूरी तरह से हटा चुका था मैं स्वीकार कर चुका था, कि भारतीय साधना सर्वोत्कृष्ट है, इससे असंभव भी संभव हो सकता है, आवश्यकता है जानने वालों की – हमारे सामने जो फरिश्ता बैठा था, वह सचमुच फरिश्ता ही था, भारतीय साधनाओं का फरिश्ता, मंत्र-तंत्र का देवदूत।

एमिस ने घुटनों के बल झुककर श्रद्धा से डॉ0 श्रीमाली के चरण चूम लिये, मेरी आंखों में प्रसन्नता के आंसू छलछला आये, मैं भी एमिस की तरह डॉ0 श्रीमाली के चरणों में झुक गया।

डॉ0 साहब पांच मिनट तक गम्भीर बने रहे, फिर बोले – 'पोलाक तुमने आज मेरा नियम भंग कर दिया, मैंने जीवन में दृढ़ निश्चय कर रखा है, कि कभी भी चमत्कार बताने के मोह में नहीं पड़ूंगा, चाहे कुछ भी हो जाए, किसी भी प्रकार के उकसाने से मैं उत्तेजित नहीं होऊंगा और न ही उत्तेजित होकर सस्तेपन से चमत्कार दिखाऊंगा, अपने जीवन में पूरी तरह से सादगीपूर्ण रहूंगा जिससे लोगों को एहसास ही न हो, कि मैं कुछ जानकार भी हूं और किसी भी प्रकार का चैलेन्ज देने पर भी अपने नियमों को तोड़ूंगा नहीं।'

मैं चुपचाप सुन रहा था, बोला – 'स्वामी जी! हम दोनों का सौभाग्य है, कि हमने आपकी साधना और सिद्धियों के अक्षय भण्डार में से एक सिद्धि देखी, इस सम्बन्ध में आपका जो कथन है वह सही है, पर स्वामीजी! आपने जो अटूट खजाना मंत्र-तंत्र का प्राप्त किया है, उससे विश्व कैसे लाभ उठायेगा? विश्व का भी तो आप पर अधिकार है?'

डॉ0 श्रीमाली बोले नहीं, शून्य में ताकते रहे।

साहस करके मेरा संकेत पाकर एमिस बोली – 'स्वामी जी! हम

बहुत देर से आपके चरणों में आये हैं, हमारी इच्छा कुछ महीने आपके चरणों में बिताने की है, क्या इजाजत मिल सकेगी?'

डॉ0 श्रीमाली बोले – 'मैं मना करने वाला कौन होता हूं, पर मेरा घर इतना छोटा है, कि उसमें मैं तुम लोगों को चाहते हुए भी नहीं ठहरा सकता।'

– 'पर आपका दिल इतना विशाल है, कि उसमें हजारों-लाखों रह सकते हैं।'

बाबा मुस्करा दिये और मुस्कराते हुए पर्दा हटाकर अन्दर चले गये।

स्पष्ट था, कि हमारे मिलने का समय समाप्त हो चुका था, पर स्वामी जी के भव्य व्यक्तित्व की छाप हमारे ऊपर पड़ चुकी थी, इस छोटी सी मुलाकात में जो कुछ देखने को मिला, वह आश्चर्यपूर्ण था, स्वामी जी के करुण स्नेह और प्रेम से लबालब जिस हृदय का परिचय उस पहली भेंट में हमें मिला, वह हमेशा-हमेशा के लिए स्मरणीय है।

अज्ञात रहस्यों का ज्ञान

"तुमने जाना है, कि एक बार मनुष्य जन्म लेता है
और इस संसार के क्रिया-कलापों को करता हुआ वर्षों बाद
मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, जबकि ऐसा नहीं है;
जब तुम वास्तविकता के धरातल पर खड़े हो कर देखोगे,
तब तुम्हें पता चलेगा,
कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है
और मृत्यु को प्राप्त हो रहा है,
क्योंकि प्रतिक्षण जो बीत गया — वह मृत्यु है।
प्रतिपल जो क्षण आ रहा है — वह जन्म है।
इस प्रकार सृष्टि और प्रलय — ये दोनों क्रियाएं
'अभी' और 'प्रत्येक क्षण' घटित हो रही हैं।"
डॉ० श्रीमाली जी से बातचीत करते हुए
प्रायः ऐसे अज्ञात रहस्यों का ज्ञान प्राप्त हो जाता था,
जिनके बारे में मेरी बुद्धि कभी सोच भी नहीं सकती थी।
उनसे जितना ज्ञान मुझे प्राप्त होता,
उससे कहीं और अधिक ज्ञान प्राप्त करने की
आकांक्षा मन में उमड़ने-घुमड़ने लगती,
तभी तो मैंने और एमिस ने उनके साथ रहते हुए,
उनके पल-प्रतिपल को सूक्ष्मता के साथ परखना
और आत्मसात करना शुरू किया,
जिसके परिणाम स्वरूप हमें प्राप्त हुआ
महत्वपूर्ण 'अज्ञात रहस्यों का ज्ञान'
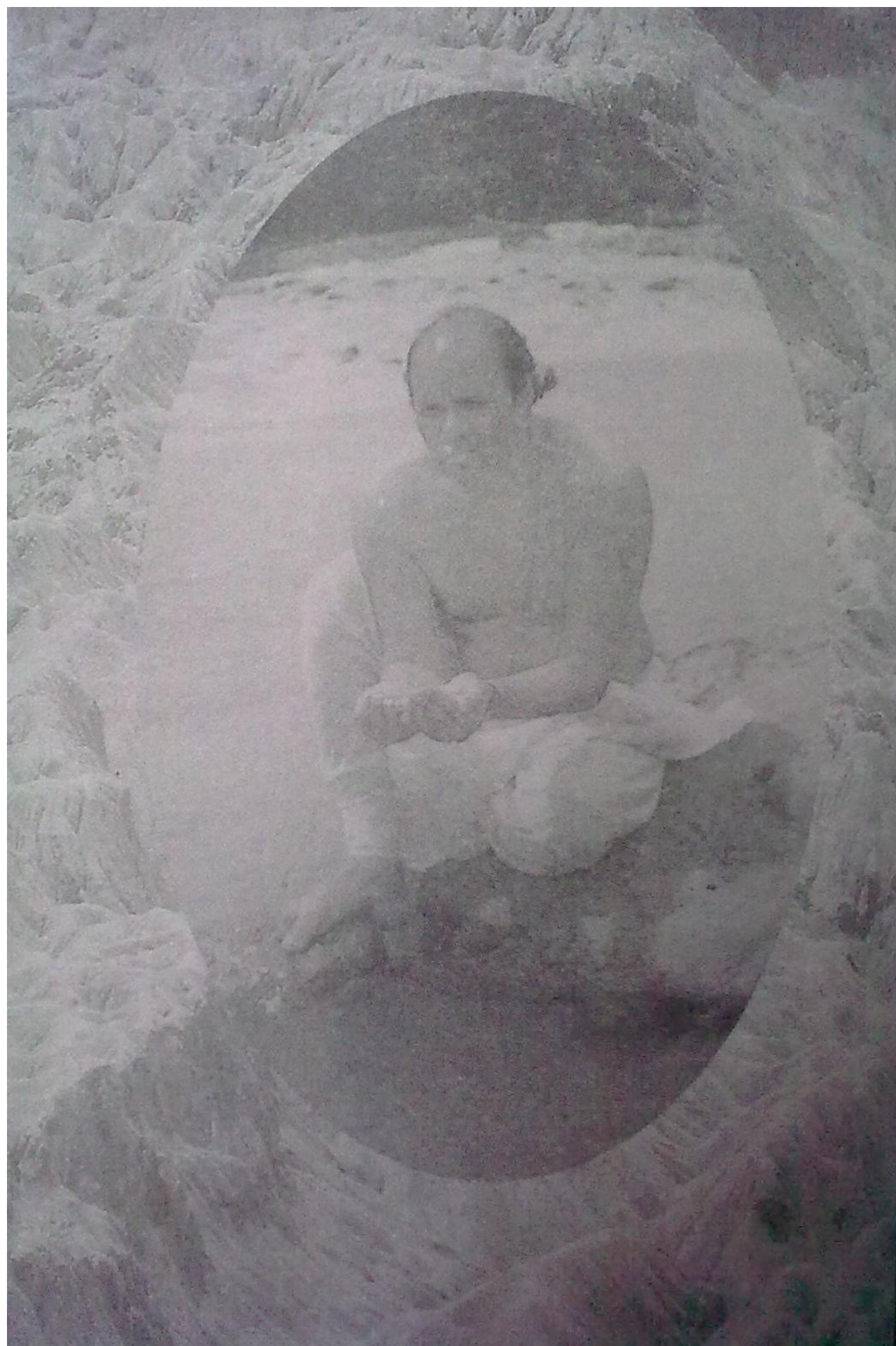
आज जब मैं इन पंक्तियों को लिख रहा हूं, तो मैं सर्वथा पूर्वाग्रह से मुक्त हूं और इन शब्दों को लिखते हुए गौरव अनुभव कर रहा हूं, कि मेरे जो क्षण डॉ0 श्रीमाली के चरणों में रहते हुए व्यतीत हुए हैं, वस्तुतः ही वे क्षण मेरे जीवन की थाती हैं, अमूल्य संपदा हैं; आज भी जब मैं और एमिस उन क्षणों को याद करते हैं, तो शरीर रोमांचित हो जाता है, आंखें सजल हो उठती हैं।

जहां तक ज्योतिष का प्रश्न है, मैं यह दावे के साथ कह सकता हूं, कि डॉ0 श्रीमाली भारत के ही नहीं, विश्व के श्रेष्ठ ज्योतिषियों में से एक हैं, मैं विश्व के कई देशों में गया हूं और अपनी जन्म-कुण्डली का अध्ययन कराना या हाथ पढ़वाना मेरा शौक रहा है; जहां भी और जब भी मैंने किसी विशिष्ट ज्योतिषी या हस्तरेखा विशेषज्ञ की चर्चा सुनी, उसके पास पहुंचने का प्रयत्न किया, ऊंचे से ऊंची फीस देकर भी अपना भविष्य पढ़वाया, परन्तु मैं कहीं भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हुआ।

मुझे अधिकतर दो प्रकार के ज्योतिषी मिले, एक तो विशुद्ध रूप

से ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान रखने वाले और दूसरे सिद्धि प्राप्त। जहां तक भविष्य दर्शन की सिद्धि का प्रश्न है, वह ज्योतिष ज्ञान से अलग हटकर बात है, वह साधना सिद्धि के क्षेत्र में आता है और इसके माध्यम से मेरे बारे में जो कुछ किसी ज्योतिषी (या सही शब्दों में सिद्ध पुरुष) ने कहा वह साठ प्रतिशत सही उतरा, चालीस प्रतिशत जो त्रुटि रहीं वह शायद उनकी साधना की अपूर्णता थी। जो शुद्ध रूप से ज्योतिष शास्त्र या हस्तरेखा शास्त्र के ज्ञाता थे, उनके द्वारा की गई भविष्यवाणियां दो-तीन को छोड़कर लगभग सभी त्रुटिपूर्ण रहीं और इस वजह से ज्योतिष पर से मेरी आस्था हट सी गई थी।

परन्तु डॉ0 श्रीमाली में जहां ज्योतिष और हस्तरेखा शास्त्र का अथाह ज्ञान संचरित है, वहां साधना क्षेत्र में भी वे अद्वितीय हैं, साधना और सिद्धि का जो अद्भुत और आश्चर्यजनक भण्डार उनके पास मैंने देखा है, वह अपने आपमें आश्चर्य मिश्रित गौरवपूर्ण है, उनकी भविष्यवाणियां आश्चर्यजनक रूप से सत्य होती देखी गई हैं।

परन्तु जैसा कि मैंने बताया और अनुभव किया, कि डॉ0 श्रीमाली अपने आपके प्रति निर्मम हैं, साधारण — अत्यंत साधारण और सादगीपूर्ण रहने में ही उनका विश्वास रहता है, अगर किसी दूसरे के पास इसका सौवां क्या हजारवां हिस्सा भी ज्ञान या सिद्धि होती, तो वह अपने आपको विश्व-विजेता मानता, दूसरों से बात करने में भी हेठी समझता, शानदार और कई मंजिले मकान में रहता, जमीन पर पांव नहीं रखता और हर समय चाटुकारों और अवसरवादियों तथा जी-हजूरियों की भीड़ से घिरा रहता, पर मैं आज तक आश्चर्य करता हूं, कि इन सबसे अछूते कैसे रह गये पंडितजी! घमंड का तो मैंने उनमें लवलेश तक नहीं देखा, प्रसन्न और मुस्कराता चेहरा तथा करुणा से सराबोर हृदय ही देखा, जीवन में कहीं पर भी कृत्रिमता या बनावटीपन की झलक तक नहीं, जो कुछ भी है स्वच्छन्द, निर्मुक्त, स्वतंत्र।

और इसके उदाहरण मैंने कई बार देखे यह स्वामीजी की कृपा ही

कि उन्होंने अपने साथ रहने की स्वीकृति दे दी, मैं नित्य उठकर स्नान से निवृत्त होकर उनके कमरे में बैठ जाता, उनकी आज्ञा को पूरी करने का प्रयत्न करता, उनके कार्यों को संभालने की कोशिश करता, परन्तु ऐसे क्षण कम ही होते, वे बहुत थक जाते, पर कभी कुछ नहीं कहते, पानी भी पीना होता तो स्वयं उठकर पी आते, नौकर तक को आवाज नहीं देते।

परन्तु उनके साथ रहने का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ, कि मैं उनके विराट रूप का कुछ अंश निकट से देख सका, उनके आत्मीय रूप की झांकी पा सका – क्या यह सौभाग्य कम है!!

✳ ✳ ✳

एक दिन ऐसी ही घटना घट गई, कलकत्ते से वायुयान द्वारा एक बहुत बड़े सेठ पधारे और आकर जोधपुर के सबसे कीमती होटल में ठहरे, फिर टेलीफोन किया, इसके बाद कार द्वारा एक सज्जन पधारे और बताया कि सेठजी पधार रहे हैं, पांच मिनट बाद फिर उनके अनुचर ने आकर बताया, कि सेठजी आने ही वाले हैं, फिर सात मिनट बाद उनके व्यक्तिगत सचिव ने आकर सूचना दी, कि सेठजी रवाना होने वाले हैं, फिर दो मिनट बाद टेलीफोन आया, कि सेठजी रवाना हो रहे हैं, फिर पन्द्रह मिनट बीत गये तब एक कार घर के सामने रुकी, उसमें उनकी लेडी सेक्रेटरी आई हुई थी, उसने आकर बताया, कि सेठजी रवाना हो चुके हैं और कुछ ही मिनटों में पहुंचने ही वाले हैं।

ये सारी सूचनाएं मैं कमरे में बैठा ले रहा था और अन्दर पंडितजी के पास भिजवा रहा था, संभवतः पंडितजी उनके दर्प से परिचित हो गये थे, उन्होंने कहलवाया – 'अच्छा हो कि मिलने का कार्यक्रम स्थगित कर दिया जाए।'

पर तभी एक बड़ी सी कार सर्र से आकर दरवाजे पर रुकी और शोफर के दरवाजा खोलने पर सेठजी कार से बाहर आये, वे अचकचा रहे थे, एक छोटे से साधारण मकान को देखकर।

फिर भी यह पंडितजी की महानता और सहृदयता थी, कि उन्होंने सेठजी का कमरे में आने पर स्वागत किया और सामने बिठाया।

सेठजी कमरे की साधारणता और सामने बैठे पंडितजी की सरलता पर चकरा रहे थे, उनको विश्वास नहीं हो रहा था, कि जिन पंडितजी का नाम सारे विश्व में गुंजरित है, उनके सामने ही वे बैठे हैं।

मौन तोड़ा सेठजी ने – 'क्या मैं डॉ० श्रीमाली से मिल रहा हूं?'

'आप ठीक सोच रहे हैं' – डॉ० श्रीमाली ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

– 'पर मैंने तो कुछ और ही सोचा था, मैंने तो सोचा था कि जिसकी इतनी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, ज्योतिष पर जिनके शब्दों को प्रामाणिक माना जाता है और जिसने देश और विदेश में इतनी ख्याति, इतना सम्मान और प्रशंसा प्राप्त की है, वह निश्चय ही साठ-पैंसठ की आयु से कम तो क्या होगा, मेरी कल्पना में डॉक्टर श्रीमाली वृद्ध, दुबले-पतले, सफेद दाढ़ी वाले तथा धोती-कुरते से सम्पन्न होंगे, जिनके पास आलीशान मकान, नौकर-चाकरों की भीड़ तथा ऑफिस में सैकड़ों कर्मचारी होंगे और घर के बाहर कारों, टैक्सियों की रेलमपेल होगी' – सेठजी एक ही सांस में सारी बात कह गये। फिर सांस खाकर बोले – 'आपको देखकर तो ऐसा कुछ भी नहीं लगता, आप जिस प्रकार के मकान में रहते हैं, ऐसे मकान तो मैंने अपने नौकरों को दे रखे हैं' ...... फिर अपने धनमद में बोले – 'और मेरी कोठी तीन एकड़ में आई हुई है।'

डॉ० श्रीमाली चुप रहे।

सेठजी बोले जा रहे थे – 'मेरे दिमाग में कुछ और ही नक्शा था, पर मकान देखकर निराशा ही हुई।'

फिर व्यावसायिक चतुरता चेहरे पर लाकर बोले – 'मुझे खरी-खरी कहने की आदत पड़ गई है, आपको बुरा तो नहीं लगा न?'

डॉ० श्रीमाली बोले – 'सेठ! इतना सब कुछ होते हुए भी तुम्हें यहां आना पड़ा! हवेली और तीन एकड़ की कोठी को चलकर इस मकान

के सामने आना पड़ा है! पर मुझे इस बात का पता चल गया है, कि तुम मूलतः राजगीर हो, मकान बनाने वाले मजदूर हो।'

– 'कैसे?'

– 'इस प्रकार कि तुम डॉ0 श्रीमाली को मिलने नहीं आये, उनके मकान से मिलने आये हो; उनके ज्ञान से लाभ उठाने नहीं, भड़कीले कपड़ों और चिकनी-चुपड़ी काया से मिलने आये हो; उनके विचारों से नहीं, आलीशान कोठी से मिलने आये हो ..... और यदि यही ठीक है, तो ऐसा ही किया जाएगा।'

फिर सचिव को बुलाकर बोले – 'सेठजी बड़ी-बड़ी कोठियों और बिल्डिंगों से मिलने आये हैं, शाम को साथ में जाकर पांच-सात बड़ी-बड़ी कोठियां दिखा देना।'

. . . और डॉ0 श्रीमाली उठकर अंदर पूजा गृह में चले गये।

लाखों-करोड़ों का मालिक अवाक् रह गया, जिसके चारों तरफ नौकर-चाकरों की भीड़ थी, जो तीन एकड़ की कोठी में रहता था, उसने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था, कि ऐसा हो जाएगा, वह तो अपने धन-वैभव का प्रभाव बताना चाहता था, पर यहां तो उल्टा हो गया। सारी दुनिया को धन की तराजू पर तोलने वाला सेठ यहां हक्का-बक्का रह गया।

दो क्षण तक तो वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा रहा, सचिव ने धीरे से बताया – 'शाम को आपको जोधपुर की कुछ कोठियां बताने के लिए ले जाने की व्यवस्था कर रहा हूं।'

सेठजी आसमान से सीधे धरती पर आ खड़े हुए, बोले – 'मुझसे गलती हो गई है, मैं माफी चाहता हूं।'

सचिव बोले नहीं।

– 'कृपया आप एक बार पंडितजी से मेरी तरफ से माफी मांग लें–प्लीज!'

सचिव अंदर गये, डरते हुए पूजा गृह के पास जाकर सेठजी की

बात कह सुनाई, पर पंडितजी ने मिलने से मना कर दिया।

सचिव बाहर आये और पंडितजी का निर्णय सुना दिया।

सेठजी कुछ क्षण असमंजस में पड़े रहे, फिर बोले – 'यह लाख रुपये का चैक है, जो अपने कार्य के लिए डॉ0 श्रीमाली को भेंट करने लाया हूं' और सचमुच जेब में हाथ डालकर डॉ0 श्रीमाली के नाम का एक चैक निकाला, जो पहले से ही लिखा हुआ था।

सचिव पंडितजी की प्रकृति को जानते थे, फिर भी सेठजी का मन रखने के लिये एक बार पुनः पंडितजी के पास जाकर सेठजी का मंतव्य एवं चैक सम्बन्धी बात कह सुनाई।

पंडितजी ने कहलवाया – 'इस बार तो क्या भविष्य में भी मैं आपसे मिलना नहीं चाहूंगा, आप अपना चैक लेकर जा सकते हैं।'

यह सरस्वती और लक्ष्मी की प्रतिद्वंद्विता थी, धनमद और ज्ञानबल की प्रतिस्पर्धा थी ..... और इसमें सरस्वती की विजय हुई, घंटे भर तक सेठजी इस आशा में बैठे रहे, कि शायद पंडित जी से भेंट हो जाये, पर यह संभव नहीं हो सका।

सेठजी का धनमद व गर्व खत्म हो चुका था और मैंने उस दिन जाना, कि क्यों डॉ0 श्रीमाली महान हैं, साधारण स्थिति में रहना उनकी परवशता नहीं, विनम्रता और महानता का प्रतीक है। ऐसी स्थिति में और कोई भी दूसरा होता, तो लाख रुपयों के चैक के सामने झुक जाता, समझौता कर लेता–पर उस व्यक्तित्व ने विशाल कोठी वाले चैक की तरफ झांका भी नहीं, उनके आदर्श और उनके सिद्धान्तों, उनके विचार और उनकी दृढ़ता को उस दिन पहली बार देखा और फिर तो इस प्रकार की स्थितियां कई बार देखीं, कि वह व्यक्तित्व अपने सिद्धान्तों पर अडिग है हिमालयवत्।

इसके कुछ दिनों बाद की ही एक घटना एमिल की डायरी में आज भी उद्धृत है, वह मैं उसी प्रकार से दे रहा हूं –

* * *

आज पोलर बाबाजी की गुफा देखने चले गये थे, मैं भी जाना चाहती थी, पर मेरा विचार अधिकतर बाबा के चरणों में बैठकर सीखने का ही रहता था; मन में निश्चय था, कि कभी गुफा देखूंगी, तो बाबाजी के साथ ही चलकर देखूंगी, अतः उस दिन मैं केन्द्र में अकेली ही थी।

बाबा प्रातः पूजादि से निवृत्त होकर कमरे में आये, मैंने प्रणाम किया तो उन्होंने हाथ उठाकर मुझे आशीर्वाद दिया। सचिव ने वह सूची सामने रखी जिनसे मिलना था या जो मिलने के लिए आये हुए थे।

आज की सूची में सर्वप्रथम नाम एक अभिनेत्री का था, जो बंबई से आई थी और आकर शानदार होटल में ठहरी थी, लोगों को और विशेषकर युवकों को उसके आने का पता न चले, इसलिए उसने अपने आपको छिपा रखा था और चुपचाप आई थी, शायद बंबई से पहले ही उसने मिलने का समय तय कर रखा था।

डॉ0 श्रीमाली के आदेश से वह आई और प्रणाम करके सामने कुर्सी पर बैठ गई, पंडितजी ने मुझ से परिचय कराया, जो अभिनेत्री लाखों-करोड़ों में खेल रही है, जिसके एक इशारे पर डायरेक्टर-प्रोड्यूसर पानी की तरह पैसा बहाने को तैयार हैं और जिसकी एक झलक देखने के लिए युवक दीवाने हैं, वह नम्रता और विनय के साथ बाबा के सामने बैठी थी।

– 'कहो! कैसे आना हुआ?'

– 'आपको तो ज्ञात ही है, मैं क्या बताऊं?'

– 'तो फिर तुम्हें सावधानी बरतनी थी, इस प्रकार से उससे उलझना ठीक नहीं था।'

– 'किससे?'

– 'जिससे तुम उलझी हो।'

– 'पर मैं तो किसी से नहीं उलझी बाबा! यह जो नई ट्रेजडी मेरे साथ घटित हुई, अभी तक केवल मात्र मुझे ज्ञात है, अपनी मां तक को मैंने नहीं बताया।'

— 'तभी तो मैं कह रहा हूं, कि अभी तक जो कुछ तुमने किया है, ठीक ही किया है, पर मिस्टर 'एस' से तुम्हें उलझना नहीं चाहिये था।'

'मैं समझी नहीं' — उसने बड़ी-बड़ी झील सी आंखें ऊपर उठाई।

डॉ० श्रीमाली मुस्करा दिये, बोले — 'मुझे मालूम है, मैडम! कि तुम्हारे जीवन में अभिनय के अलावा और भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, जो कि आर्थिक स्रोत का अच्छा साधन है पर पूर्ण रूप से समाज विरोधी है, जिसका नेतृत्व 'एस' अक्षर से शुरू होने वाले व्यक्ति के पास है, नाम बताऊं उसका?'

अभिनेत्री बोली नहीं पर उसका चेहरा कह रहा था, कि यदि पूरा नाम न ही बताया जाये तो उचित रहेगा।

— 'रुपयों के लेन-देन के मामले में तुम 'एस' से उलझ चुकी हो और उसने तुम्हें जान से मार देने की धमकी दी है और इस धमकी से डरकर ही तुम यहां आई हो।'

अभिनेत्री का चेहरा फक् हो गया, गुलाबी चेहरे पर क्षण-क्षण में रंग बदल रहे थे, दो-तीन मिनट उसने अपने आपको संयत होने में लगा दिये, फिर थूक सटक कर हौले से बोली — 'अब? अब आगे क्या होगा?'

— 'आज से चौथे रोज तुम्हारी लाश समुद्र में तैरती नजर आयेगी, चाहे तुम सुरक्षा का कितना ही प्रयत्न कर लो, उससे कुछ भी फर्क नहीं पड़ेगा, यह तुम्हारी स्वाभाविक मृत्यु नहीं, अकाल मृत्यु होगी।'

सुन्दरी को काटो तो खून नहीं, वह डॉ० श्रीमाली के ज्ञान से परिचित थी और इन दिनों वह जिस उलझन में उलझी थी, उसमें ऐसा कुछ भी घटित हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं।

उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से आंसू टपक पड़े, डॉ० साहब दो क्षण तक चुपचाप उसकी ओर देखते रहे; जब उन्हें एहसास हो गया, कि सुन्दरी निर्दोष है, तो उन्होंने उसका मांत्रिक उपाय भी बता दिया और यह आश्वासन भी दे दिया, कि "दि दो दिनों तक इस मंत्र का जप करवा दिया जाय, तो

निश्चय ही समस्या से पूर्णतया मुक्ति मिल सकती है।

मुझे आज भी अच्छी तरह से याद है, कि डॉ0 श्रीमाली से अभयदान पाकर उसका चेहरा किस प्रकार खिल उठा था, आंसुओं के बीच भी उसका चेहरा किस प्रकार झिलमिला उठा था, वह आज भी मैं भूली नहीं हूं।

आज भी जब मैं उस घटना को स्मरण करती हूं, तो ज्ञात होता है, कि डॉ0 श्रीमाली कितने दयार्द्र हैं, यदि उन्हें यह एहसास होता है, कि सामने वाला सत्य व न्याय-पथ पर है, तो वे उसकी सहायता करने के लिए सब कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं।

* * *

डॉ0 श्रीमाली से मिलने नित्य प्रत्येक स्तर, प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक धर्म के लोग आते रहते हैं, उनका द्वार चौबीसों घंटे प्रत्येक के लिए खुला रहता है, चाहे वे कितने ही थके हों, रात्रि को शयन कक्ष में जाने की तैयारी कर चुके हों और उस समय भी यदि कोई बिना पूर्व सूचना दिये आ जाता है, तो वे जाते-जाते रुक जाते हैं, उससे मिलते हैं, यथासंभव उसकी समस्या को सुनकर उसका निराकरण करते हैं और जहां तक हो सकता है, उसकी मदद करते हैं। मैंने कई बार नोट किया है, कि दूर-दूर से कई युवक महज अपना भविष्य जानने के लिए जोधपुर आ जाते हैं, उनके पास वापिस घर पहुंचने तक का किराया भी नहीं होता, ऐसी स्थिति में भी पंडित जी छलकते या उफनते नहीं, अपितु नई पीढ़ी के इन जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को शांत करते हैं तथा वापसी का किराया तक देते हैं, जिससे कि उनको मार्ग में कोई तकलीफ न हो।

एक दिन ऐसे ही कुछ क्षणों में जब एमिस ने पंडित जी से पूछा – 'बाबा! इस उम्र में भी इतना अधिक काम आप क्यों करते हैं, कुछ तो आराम करना चाहिए आपको?'

तो बाबा ने जो उत्तर दिया था, वह आज भी मेरी डायरी में अंकित है और मेरे परिवार के लिए प्रेरणा वाक्य बना हुआ है –

"कर्म तो हमारे जीवन का मूल आधार है, कर्म ही जीवन है, चेतना है, स्पंदन है; आराम मृत्यु की अग्रजा है, जड़ता का प्रारम्भिक बिंदु है। अतः वे ही क्षण सार्थक हैं, जो कर्म से जुड़े हुए हैं।"

इन दो-तीन पंक्तियों में ही उनके जीवन का सार आ जाता है। मैंने इस व्यक्ति में अद्‌भुत दीप्ति देखी है, जो बिरले लोगों में ही देखने को मिलती है, निरंतर कार्य करते रहने की जो आग इस व्यक्ति के अंतर में धधकती है, वह सहज ही धीमी नहीं पड़ सकती। दिन-रात के चौबीस घंटों में बाईस-बाईस घंटे अनवरत कार्य करते मैंने देखा है और वह भी एक-दो दिन नहीं, महीनों; निद्रा को तो इस व्यक्ति ने वशवर्ती बना रखा है।

इतना होने पर भी इस व्यक्ति के चेहरे पर कभी थकान नजर नहीं आयेगी, बातचीत में शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं होगी, चेहरे पर पूर्ण उमंग, उत्साह और ताजगी– कि देखते ही सामने वाले की थकावट दूर हो जाती है, बातचीत करने में आनन्द आने लगता है।

एक दिन मैंने सुअवसर जानकर स्वामी जी से पूछा – 'स्वामी जी! आप इतना अधिक परिश्रम करते हैं, जब भी आपको देखता हूं, बराबर कार्य में लगे हुए ही देखता हूं और इसका विपरीत प्रभाव आपके शरीर पर भी निश्चय ही पड़ रहा है। क्या अपनी देह के प्रति, सुन्दर स्वास्थ्य के प्रति इतना निर्मम और कठोर होना उचित है?'

डॉ0 श्रीमाली दो क्षण मौन रहे, बोले – 'जब से मैंने होश संभाला है, श्रम को महत्त्व दिया है, अब तक कुछ ऐसा अभ्यास पड़ गया है, कि यदि मैं काम न करूं तो बीमार पड़ जाऊं, निरन्तर पंद्रह-सोलह घंटों का अथक परिश्रम ही मेरी खुराक है, मेरी तंदुरस्ती का रहस्य है।'

– 'पर डॉ0 साहब! इसका प्रभाव आपके स्वास्थ्य पर पड़ रहा है, आप चाहे अनुभव करें या न करें, पर मैं देख रहा हूं, कि पिछले कुछ दिनों से आप शांत से दिखाई देने लग गये हैं।'

डॉ0 साहब हंस दिये – 'तुम नहीं समझोगे' . . . और आगे के शब्द कहकहों में डूब गए।

वे व्यक्ति सौभाग्यशाली हैं, जिन्होंने डॉ0 साहब को कहकहे लगाते देखा है। जब मैं अपने पिछले जीवन को देखता हूं और उस पूरे समय को एकबारगी ही ध्यान में लाता हूं, तो मैंने केवल एक बार– मात्र एक बार उन्हें कहकहे लगाते देखा है, खिलखिलाकर हंसते हुए देखा है– और निश्चय ही उनकी वह छवि अत्यंत मनोहर होती है, वह मनोहर छवि आज भी मेरे कैमरे में सुरक्षित है और इस चित्र को मैं अपने जीवन की थाती समझता हूं। मैंने सैकड़ों-हजारों चित्र खींचे होंगे, ऊंचे से ऊंचे राजनीतिज्ञों और व्यक्तियों से मिला होऊंगा, उनके चित्र लिए होंगे, विभिन्न कोणों से, विभिन्न पोजों में – परन्तु स्वामी जी का यह चित्र सबसे अधिक मूल्यवान है, क्योंकि इस चित्र में डॉ0 श्रीमाली का आह्लादकारी रूप है।

एमिस का कथन भी अपने आपमें महत्त्व रखता है, कि बाबा हर समय मुस्कुराते रहते हैं, पूरी अवधि में स्वामी जी को कभी भी निराश या हताश नहीं देखा, उनके चेहरे पर विषाद के कण दृष्टिगोचर नहीं हुए; जब भी उन्हें देखा, मुस्कुराते हुए, चहकते हुए – उनके चारों ओर अपूर्व आनन्द सा बिखरा रहता है।

यह मेरा सौभाग्य है, कि मुझे उनके साथ रहने का अवसर मिला है, उन्हें निकट से देखने-परखने का अवसर मिला है। आज मैं यह बात खुलकर कह रहा हूं, कि जब मैंने डॉक्टर साहब के साथ रहने की इच्छा प्रकट की थी, तब मेरे मन में उनकी कमजोरियों का पर्दाफास करने की कुटिल इच्छा थी, मैं निकट से यह देखना चाहता था, कि डॉक्टर साहब में कितनी वास्तविकता है? . . . पर ज्यों-ज्यों मैं उनके निकट होता गया, मुझे उनकी महानता का पता लगता रहा, पहले-पहले जो व्यक्ति मुझे 'साधारण' सा प्रतीत हुआ, आगे चलकर वही व्यक्ति सागरवत् गंभीर और हिमालयवत् महान लगा – और मेरा मन स्वतः ही उनकी 'महानता' और 'विशालता' के प्रति झुकता गया।

ज्योतिष और हस्तरेखा के प्रति डॉ0 श्रीमाली का जीवन पूरी तरह से समर्पित है, प्रत्येक क्षण का सदुपयोग किस प्रकार से हो सकता है, यह

डॉ0 श्रीमाली बखूबी जानते हैं। नित्य नये व्यक्ति उनसे मिलने आते हैं, नित्य नई समस्यायें उनके सामने आती हैं और इस प्रकार की विभिन्न व विविध समस्याओं के निराकरण वे ज्योतिष के माध्यम से करते हैं। लोग परेशान से, चिंतित से इनके द्वार पर आते हैं और प्रसन्नता के साथ, संतोष के साथ विदा लेते हैं, जाते समय उनके चेहरे से ऐसा लगता है, मानों सारी समस्याएं डॉ0 श्रीमाली को देकर राहत की सांस ले ली हो . . . और ढेर सारे नित्य नई समस्याओं से जूझने के बावजूद भी डॉ0 श्रीमाली प्रसन्नचित्त हैं, मुस्कुराहटपूर्ण हैं, प्रफुल्लित हैं।

अगर ऐसे व्यक्ति को नीलकंठ न कहा जाय, तो क्या कहा जाय? जो सारी समस्याओं का जहर अपने ही कंठ में समाये रहते हैं, सामने वाला व्यक्ति परेशान न हो, उसके प्रत्येक क्षण का एहसास उन्हें रहता है। इस छोटी सी अवधि में पंडित जी के साथ रहने का अवसर मिला और उनके साथ यात्रा करने का भी सौभाग्य मिला। इस छोटी सी अवधि में ज्योतिष से संबंधित जो भी घटनायें घटी, यथा सम्भव सभी मैंने अपनी डायरी में उतारने का प्रयास किया है, उनमें से कुछ घटनायें आगे के पृष्ठों में दे रहा हूं–

* * *

प्रात:काल का समय! पंडित जी पूजा आदि से निवृत्त होकर कमरे में बैठे ही थे, कि घंटी बजी, पंडित जी ने मुझसे कहा – 'पोलर! बाहर भोपाल से एक महिला आई है, उसे अंदर लिवा लाओ।'

मैं दरवाजा खोलकर बाहर गया, तो दरवाजे पर शुभ्र वस्त्र धारण किये एक महिला खड़ी थी।

मैंने पूछा – 'आप भोपाल से आई हैं?'

'हां' – संक्षिप्त सा उत्तर मिला।

– 'अंदर आ जाइये, पंडित जी कमरे में बैठे हैं, आप मिल लें।'

महिला मंथर गति से अंदर आई और पंडित जी को प्रणाम कर

एक तरफ बैठ गई।

पंडित जी ने आने का कारण पूछा तो महिला सकुचा गई, कुछ कहना चाहते हुए भी कह न पाई, पर ऐसा लगा, जैसे कि उसकी आंखें डबडबा आई हों।

पंडित जी दो क्षण सोचते रहे, फिर बोले – 'ऐसा लगता है, तुम जिस उद्देश्य से आई हो और जो कुछ कहना चाहती हो, वह कह नहीं पा रही हो, पर तुम्हारे दिल में विचारों का झंझावात सा चल रहा है, अगर तुम न कह सको, तो मैं कहूं?'

महिला का सिर धीरे से हिला, पंडित जी ने उस महिला के बायें हाथ की रेखाओं पर एक दृष्टि डाली और बोले–

– 'इस समय तुम अपने पति की समस्या से पीड़ित हो?'

महिला की गर्दन स्वीकृति में हिली।

– 'तुम्हारे पति तुम्हें चाहते हुए भी परस्त्री में अनुरक्त हैं?'

– 'हूं'

– 'वह स्त्री तुम्हारे ही मकान में किरायेदार के रूप में रहती है, उसकी आयु इक्कीस वर्ष के लगभग है। उस स्त्री के साथ तुम्हारे पति के सम्बन्ध लगभग पिछले पांच साल से चल रहे हैं, पर तुम्हारे मन में जो शक था, उसकी पुष्टि इसी महीने की पांच तारीख को हुई है।'

– 'हां' . . . 'पंडितजी! मैंने अपनी आंखों से देखा है।'

– 'और यह भी सुन लो, कि इसी महिला के कारण तुम्हारे पति तुमसे सम्बन्ध-विच्छेद इसी वर्ष ग्यारह नवम्बर को कर देंगे तथा सत्रह नवम्बर को तलाक दे देंगे।'

स्त्री फफक पड़ी, गला हिचकियों से भर गया।

बोली – 'पंडितजी! अगर ऐसा हो गया, तो मेरा तो सर्वस्व उजड़ जायेगा, मैं कहीं की भी नहीं रहूंगी, इसने मेरा सब कुछ लूट लिया है, अब मेरे पास रहा भी क्या है जिससे मैं भविष्य में समाज के सामने खड़ी हो

सकूंगी या नई गृहस्थी बसा सकूंगी' . . . और उसकी आंखों से अजस्र जलधार बरस पड़ी।

पंडितजी दो-तीन मिनट तक ऊपर छत की ओर ताकते रहे, फिर बोले – 'होना तो यही है जो मैंने कहा है, पर तू इस दरवाजे तक आ ही गई है, तो अब खाली हाथ नहीं लौटेगी। मैं एक छोटा सा प्रयोग तुम्हें बता रहा हूं, तुम इसे नित्य प्रातः करो, तो अपने पति को भी प्राप्त कर सकोगी और उस कुलटा से भी पिण्ड छूट जायेगा।'

पंडितजी ने उसे छोटा सा प्रयोग बताया और मुझे स्मरण है, कि बाद में जब वह फरवरी में मिली, तो उसने बताया था, कि वास्तव में ही पंडितजी अंतर्द्रष्टा हैं, मेरे पूछे बिना ही उन्होंने मेरे जीवन की समस्या को समझ लिया और उसका उपाय भी बता दिया। मैंने उस प्रयोग को किया, उसका आश्चर्यजनक परिणाम निकला, महीने भर में ही उस कुलटा से मेरे पति की लड़ाई हो गई और उन दोनों के बीच सम्बन्ध विच्छेद हो गये।

***

जौनपुर की घटना तो आज भी मेरी डायरी में अंकित है और मेरे मस्तिष्क में हलचल मचाये हुए है। जौनपुर के श्री केशवनाथ शर्मा पंडित जी के पास आये, उनके साथ उनकी पुत्री भी थी। इससे पूर्व भी शर्मा जी कई बार पंडित जी से मिल चुके थे। वे जब भी पंडित जी से अपनी पुत्री के विवाह की बात चलाते, तो पंडित जी या तो टाल जाते या मना कर देते– इस प्रकार उनकी पुत्री लगभग छब्बीस बरस की हो गई थी।

उस दिन जब वे अपनी पुत्री सुषमा के साथ जोधपुर आये, तो होटल में रुके और मिलने का समय मांगा। उस दिन बाहर से आने वालों की संख्या पचास के करीब थी, अतः शाम को करीब चार बजे के लगभग मिलने का समय तय हो सका और वे ठीक चार बजे मिलने के लिए पहुंच भी गये।

मैं कमरे में ही था, गुरुजी ने मुस्कुराकर उनका स्वागत किया, इधर-उधर की बातचीत के बाद शर्माजी अपने मूल विषय पर आये –

'गुरुजी! आज मैं अपनी बिटिया सुषमा के साथ आपके पास विशेष कार्य से आया हूं।'

'मैं जानता हूं' – गुरुजी ने मुस्कराकर उत्तर दिया।

श्री शर्माजी दो मिनट चुप रहे, फिर बोले – 'गुरुजी, अगले दो-तीन महीनों में मैं सुषमा की शादी कर निवृत्त हो जाना चाहता हूं, फिर तो मुझे कोई चिन्ता नहीं रहेगी . . . और जी भर आपकी सेवा किया करूंगा।'

गुरुजी मुस्करा दिये, दो क्षण रुक कर बोले – 'मेरी राय में तो अभी एक साल ठहरो, अगले साल विवाह कर लेंगे।'

– 'मुझे समझ में नहीं आता, गुरुजी आप क्या कह रहे हैं, बिटिया छब्बीस की पूरी हो गई है, अगले महीने सत्ताइसवां लग रहा है, मेरी एक ही बिटिया है, मेरे जीवन का सहारा भी यही है। मैं चाहता हूं जल्दी से जल्दी बिटिया के हाथ पीले कर दूं और साल-दो साल बाद इसके आंगन में किलकता दोहता देख लूं, फिर मेरे मन में कोई इच्छा नहीं रहेगी।'

गुरुजी चुप रहे।

शर्मा जी बोले – 'मैंने छः जून का मुहूर्त निकलवा लिया है, रिश्ता तय हो गया हैं, आपको पत्र में सारी बातें लिख दी हैं, लड़का भी योग्य है, घर भी अच्छा है, सुषमा वहां सुख से रह सकेगी।'

गुरुजी इस बार भी चुप रहे।

– 'अब मैं आपकी कोई बात नहीं मानूंगा, आपको मेरी बिटिया की शादी में आना ही पड़ेगा, आप नहीं आयेंगे तो मैं कन्यादान ही नहीं कर सकूंगा।'

– 'पर मैं नहीं आ सकूगा या यों कहो, कि मेरा आना उचित नहीं रहेगा।'

इस बार सुषमा बोली – 'क्यों गुरुजी! आप मेरी शादी में नहीं आयेंगे, अपनी बिटिया की शादी में नहीं आयेंगे, तो किसकी शादी में आयेंगे,

बिना आये मैं घर से विदा नहीं लूंगी।'

गुरुजी की आंखें नम सी हो आईं, बोले – 'तू कह रही है, तो मैं आऊंगा, पर मेरा आना कहां तक उचित रहेगा . . . खैर, मेरी राय में तो अभी तुझे शादी करनी ही नहीं है।'

शर्मा जी उठ खड़े हुए, बोले – 'गुरुजी! आप समाज को नहीं जानते, मेरा समाज मुझ पर थूक रहा है, इतनी बड़ी बेटी को कब तक घर में बिठाये रखूंगा, आपको आना ही है।'

– 'गुरुजी! मेरी सौगंध अगर आप शादी में नहीं आये तो' . . . बड़ी-बड़ी आंखें फड़फड़ाकर सुषमा ने मासूमियत से कहा।

'जैसी प्रभु की इच्छा' – कहते-कहते गुरुजी उठ खड़े हुए।

मैं समझ नहीं पा रहा था, कि गुरुजी विवाह के लिए क्यों मना कर रहे हैं? भारत में तो इतनी बड़ी लड़की अविवाहित नहीं रहती, फिर क्या कारण है? पर जल्दी ही इसका प्रमाण भी मिल गया।

छः जून से पहले लगभग आठ-दस टेलीग्राम शर्मा जी की तरफ से आ गये और एक दिन खुद शर्मा जी भी आ गये, बोले – 'ले जाने के लिए आया हूं, आपको चलना ही पड़ेगा; बेटी का ब्याह है, कितना काम होता है, फिर भी लेने आया हूं, आप खुद मेरी परिस्थिति पर विचार करें।'

– 'मैं चलकर भी क्या करूंगा, मेरी राय में मुझे मत ले जाओ।'

पर शर्मा जी कब मानने वाले थे, उनके स्नेह-हठ के सामने गुरुजी को झुकना ही पड़ा और उन्होंने जाने का निश्चय अनमने भाव से कर लिया।

मैंने भी साथ चलने की आज्ञा चाही, तो गुरुजी ने दो क्षण सोचकर स्वीकृति दे दी, एमिस माता जी के पास ही रही।

विवाह धूमधाम के साथ सम्पन्न हो गया।

हिन्दुओं के विवाह में सबसे कारुणिक दृश्य तब होता है, जब बेटी की विदाई होती है, एक तरफ बेटी का डोला अज्ञात शहर की ओर रवाना

होता है, उसकी आंखें आंसुओं से लबालब भरी होती हैं, दूसरी तरफ उसके बाप, मां, भाई, बहिन, परिजन आदि चीत्कार कर उठते हैं, यह बिछड़ना कितना बोझिल होता है, इसे वही जान सकता है, जिसके जीवन में ऐसे क्षण आये हों।

यद्यपि मैं पाश्चात्य सभ्यता में पला हूं, पर उस समय उस वातावरण में मेरी आंखें भी भींग गईं ... पर गुरुजी एक तरफ उदास, खिन्न, चिन्तित और शून्य में ताकते हुए बैठे थे।

मैं पास में गया पूछा – 'क्या गुरुजी! आप विदाई नहीं देंगे, बेटी के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद नहीं देंगे?'

गुरुजी की आंखें छलछला आईं, छलछला क्या आईं, आंखों की कोर से अश्रुधार बह आई, मैं आश्चर्यचकित हो गया – 'क्या बात है? गुरुजी और विचलन? चट्टान में से जलधार कैसे फूट पड़ी?'

तब तक शर्मा जी आ गये, सुबकते हुए बोले – 'गुरुजी! सुषमा जा रही है।'

गुरुजी ने अपने आपको नियंत्रित किया, उनका ज्योतिष हृदय जाग गया था, बोले – 'बिटिया कहीं नहीं जा रही है, अभी चार घंटों में वापिस आ जायेगी।'

'क्या मतलब! क्या कह रहे हैं आप!!' – शर्माजी ने अश्रुपूर्ण रुंधे गले से पूछा।

– 'हां, शर्माजी! बिटिया अपने ससुराल चार-छः घंटों से ज्यादा ठहर न सकेगी . . . विधवा हो जायेगी और उल्टे पैर इसे वापिस यहां आना पड़ेगा, इसकी पूरी उम्र आपके ही घर में व्यतीत होगी; इसीलिए मैं इसके विवाह का विरोध कर रहा था। इसके हाथ में योग ही इस प्रकार का बना है, कि यह जब भी, जिस भी युवक के साथ विवाह करेगी, वह अल्पायु ही होगा और विवाह के बाद चार-छः घंटों से ज्यादा जीवित नहीं रह सकेगा, इसीलिए मैं विवाह में आना नहीं चाहता था, विवाह का विरोध ही इसीलिए कर रहा था, कि यह टल जाये। विवाह नहीं होता तो यही टीस रहती, कि

विवाह नहीं हुआ तो क्या हुआ, वैधव्य का अभिशाप तो नहीं भोगना पड़ता' . . . पर 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' . . . खिन्न से शून्य में ताकते हुए एक ही सांस में गुरुजी ने कह दिया।

यह बात केवल मेरे और शर्मा जी के सामने कही गई थी, उनके शब्द सुनकर ऐसा लगा, जैसे धरती फट गई हो, शर्माजी का चेहरा तो ऐसा हो गया, जैसे सूत दिया गया हो . . . सफेद . . . ओजहीन।

तभी सुषमा सहेलियों के साथ गुरुजी की तरफ आ गई और सीने से लगकर हिचकियां भरने लगी, उसे गुरुजी से अपने पिता से भी ज्यादा स्नेह मिला था।

पर गुरुजी निश्चल जड़वत खड़े रहे, न हिले, न डुले . . . मुंह से आशीर्वाद का बोल तक नहीं फूटा।

सहेलियों ने सुषमा को हटाया, गुरुजी तेजी से घर से बाहर निकल पड़े . . . मैं उनके पीछे-पीछे था . . . वे वहां से एक मील दूर एक मंदिर में जाकर निढाल गिर पड़े।

दो क्षण बाद जब गुरुजी कुछ स्वस्थ हुए, तो मैंने पूछा – 'आप तो सर्वज्ञ हैं, क्या इसका कोई उपाय नहीं था?'

– 'नहीं पोलर! कोई उपाय होता, तो मैं करने से नहीं चूकता, अकाल मृत्यु को टाला जा सकता है, पर मृत्यु को कोई नहीं टाल सकता; उस युवक की, जिसने सुषमा से शादी की है, उम्र ही इतनी है, यह स्वाभाविक मृत्यु है, इसे टालना संभव ही नहीं है।'

मैं चुप रह गया। मेरे मन के घुमड़ते विचारों को जान गुरुजी बोले – 'पोलर! मानव जीवन में मृत्यु स्वाभाविक है, अवश्यम्भावी है। जो पैदा होता है, वह मरेगा ही; जो खिला है, वह मुरझायेगा ही; परन्तु यह मौत दो प्रकार की होती है– एक स्वाभाविक मृत्यु और दूसरी अकाल मृत्यु।'

'जो स्वाभाविक मृत्यु है, उसे कोई नहीं टाल सकता, अत्यंत उच्च

स्तर का साधक इस प्रकार की मृत्यु को टाल सकता है या उसकी आयु में वृद्धि कर सकता है, परन्तु वह भी अत्यंत विशिष्ट प्रयोग से। दूसरे प्रकार की मृत्यु अकाल मृत्यु होती है, जो जीवन में निश्चित आयु के पूर्व ही हो जाती है, विधाता ने जो आयु लिखी है, उससे पूर्व किसी कारणवश मृत्यु को प्राप्त हो जाना अकाल मृत्यु कहलाती है।'

'अकाल मृत्यु एक्सीडेंट से, दुर्घटना से, आत्महत्या, तांत्रिक मारण प्रयोग से या ऐसे ही किसी अन्य कारणों से होती है। इस प्रकार की अकाल मृत्यु को निश्चय ही मांत्रिक प्रयोग से टाला जा सकता है।'

मेरे सामने मृत्यु की वास्तविकता स्पष्ट हो रही थी, तभी शर्माजी ढूंढ़ते हुए पागलों की तरह वहीं आ पहुंचे और लगे दहाड़ मार-मार कर रोने, मुंह और आंखें आंसुओं से तरबतर थीं।

बड़ी मुश्किल से शांत किया जा सके उन्हें। पूछने पर अटकते-अटकते उन्होंने बताया, कि सुषमा के पति को विवाह के चार घंटे बाद ही सांप ने काट खाया और तत्काल उसकी मृत्यु हो गई, उसके दाह-कर्म की तैयारी की जा रही है। जिन हाथों से मैंने उस की दुल्हन बनाया था, उन्हीं हाथों से उसके हाथ की चूड़ियां फोड़कर आया हूं . . . और गुरुजी के पांवों से लिपट-लिपटकर शर्माजी जिस प्रकार रो रहे थे, उस दुःखद दृश्य का वर्णन ही नहीं किया जा सकता।

गुरुजी बोले — 'मैं जानता था, मैंने तो पहले ही बता दिया था।'

कितना आत्मविश्वास है, डॉ0 श्रीमाली में, यदि इस घटना को एक तरफ रख दें, तो यह तो स्पष्ट है, कि ज्योतिष का कितना ठोस ज्ञान है, उन्हें अपने आपमें, और कितनी दृढ़ आस्था है उनमें। उनके द्वारा जो भविष्यवाणी हो जाती है, वह कितनी सही उतरती है, यह तो इस घटना से स्पष्ट हो जाता है।

***

एमिस स्वयं डायरी लिखती है और मनोविज्ञान में निष्णात होने की वजह से छोटी से छोटी बात को काफी गहराई से अनुभव करती है। उसकी डायरी में भी ऐसी कई घटनायें अंकित हैं, जो कि डॉ0 श्रीमाली के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने में सहायक हैं। यद्यपि एमिस की डायरी में डॉ0 श्रीमाली के संन्यासवत् जीवन या मांत्रिक जीवन का लेखा-जोखा ज्यादा है, फिर भी उन घटनाओं में ज्योतिष से सम्बन्धित भी कुछ घटनायें अंकित हैं, एक घटना मैं उसकी डायरी से लिख रहा हूं –

* * *

आज दिन भर गुरुजी व्यस्त रहे, प्रात: से ही मिलने वालों का तांता कुछ इस प्रकार से था, कि दोपहर की पूजा में भी पांच-सात मिनट का विलम्ब हो गया। पंडितजी समय के पाबंद हैं और विशेषकर अपनी साधना या पूजा के समय में विलंम्ब तो उन्हें असह्य है।

सायंकालीन मुलाकातियों में सबसे पहला नाम हालीवुड की नर्तकी सर्लेन सूसन का था, उसके पैरों में जो थिरकन और गति में जो चपलता है, वह बहुत कम अभिनेत्रियों को प्राप्त है। मिस सूसन की गणना विश्व की श्रेष्ठ सुन्दरियों में की जा सकती है और नृत्य के क्षेत्र में तो वह अद्वितीय है, इसमें कोई दो राय नहीं।

पिछले कुछ समय से वह भारत में आई हुई थी और उसने बंबई के किसी फिल्म फेस्टिवल में भाग लिया था, वहीं फिल्मी पार्टी उसने डॉ0 श्रीमाली का नाम सुना था।

तीन-चार ट्रंककॉल कर उसने डॉ0 श्रीमाली को बंबई आने का आग्रह किया, परन्तु अत्यधिक व्यस्तता के कारण डॉ0 श्रीमाली का बंबई जाना संभव नहीं हो सका, थक-हारकर उसने ही जोधपुर आने का निश्चय किया, चुपचाप . . . बिना किसी पूर्व सूचना के।

फिल्मी क्षेत्र में डॉ0 श्रीमाली का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया

जाता है। भारत में फिल्मी हीरो और हिरोइनों के प्रति जनता में 'क्रेज' है, नवयुवक उनको देखने के लिए उतावले और दीवाने रहते हैं और यदि इनकी गंध भी लग जाती है, तो पूरी की पूरी भीड़ जमा हो जाती है। मैंने भारत के अलावा अन्य कहीं पर भी इतना दीवानापन नहीं देखा, परन्तु वे हीरो और हिरोइनें डॉ0 श्रीमाली से मिलने के लिए बेताब रहती हैं, उनसे अपॉइन्टमेंट लेने में खुशकिस्मती समझती हैं, डॉ0 श्रीमाली के प्रति उनके मन में 'क्रेज' है, एक 'दीवानापन' है।

भारत प्रवास में मेरा जो समय डॉ0 श्रीमाली के चरणों में बीता, उस समय मैं जोधपुर में कई चोटी के हीरो और हिरोइनों से मिली और उनके साथ फोटो भी लिये, अधिकतर ये स्टार एक दिन पहले ट्रंककॉल से पंडितजी के जोधपुर में होने की सूचना प्राप्त करते, फिर उनसे समय मांगते और दूसरे दिन मॉर्निंग फ्लाइट से आकर उनसे मिलते और शाम की फ्लाइट से लौट जाते। उनका आना अपने आपमें गोपनीय बना रहता, कई बार तो मैंने देखा, कि कार्याधिक्यता के कारण जब टेलीफोन ट्रंक पर पंडितजी मिलने से मना कर देते, फिर भी वे दूसरे दिन आ धमकते और विनती करके समय मांग ही लेते और अपने अभिनय में वास्तविकता का पुट दे कर किसी न किसी प्रकार से मिलने की व्यवस्था कर ही लेते।

इस छोटी सी अवधि में मैंने भारत के कई प्रसिद्ध हीरो, हिरोइनों, डायरेक्टरों, प्रोड्यूसरों को डॉ0 श्रीमाली से भेंट करते हुए देखा, कई बार उन्हें मिलने में दो-दो, तीन-तीन घंटे भी इंतजार करना पड़ता और वह समय वे बातचीत करके या चुटकुले कहकर बिताते।

इसी फिल्मी माहौल में सूसन ने डॉ0 श्रीमाली का नाम सुना था और उनसे मिलने के लिए बेताब हो उठी थी, उसने दो दिन पहले टेलीफोन भी किया था, पर व्यस्तता के कारण समय देना संभव न था। दूसरे दिन दो बार टेलीफोन किया, पर कोई रास्ता नहीं निकल सका, तब दृढ़ निश्चय कर वह फ्लाइट पकड़कर जोधपुर आ गई थी और होटल में अटैची रखकर

सीधी डॉ0 श्रीमाली के निवास पर आ पहुंची।

वहां पर उसकी पहली भेंट मुझसे हुई, उसने अपना परिचय दिया और डॉ0 श्रीमाली से मिलने की इच्छा प्रकट की। मैंने बताया, कि अगले तीन दिन तक तो उनका कार्यक्रम इतना 'टाइट' है, कि कोई गुंजाइश ही नहीं है, फिर भी मैं प्रयत्न करती हूं और गुरुजी के सामने बात को रख देती हूं। यदि वे चाहेंगे, तो मिलने की व्यवस्था कर ही लेंगे।

उसने कहा – 'दीदी! यहां पर तुम मेरी एडवोकेट हो, मुझे मिलना तो है ही, चाहे कुछ भी हो, जल्दी मिला लोगी, तो जिन्दगी भर एहसान मानूंगी।'

मैंने समय देखकर गुरुजी से सूसन के बारे में चर्चा की और मिलने की प्रार्थना की, तो क्षण भर उन्होंने मेरे चेहरे की ओर ताका और मुस्कराये, फिर हंसकर मिलने का समय दे दिया। उनका मेरे चेहरे की ओर ताक कर मुस्कुराना इस बात का सूचक था, कि 'तुम दोनों ने जो सांठ-गांठ की है, वह मैं जान गया हूं, फिर भी जाओ बुला लो।'

शाम को लगभग साढ़े छः बजे सूसन को मिलाना संभव हो सका। सूसन ने बताया – 'मैं बंबई के एक फिल्म फेस्टिवल में भाग लेने आई थी, पर वहां जब आपके बारे में सुना और आपके गुणों के बारे में जाना, तब मेरे लिये फेस्टिवल बेमजा हो गया और आपसे मिलने के लिए बेताब हो उठी। मैंने चार-पांच ट्रंककॉल भी किये, पर मिलना संभव नहीं हो सका। पर मैं भी जिद्द की पक्की हूं। मैंने निश्चय कर लिया, कि आपसे मिलकर ही अपने देश लौटूंगी और ईश्वर का लाख-लाख शुक्रिया, कि आपसे मिलना संभव हो सका। आज का दिन मेरे जीवन का खुशनुमा दिन है और ये क्षण जिन्दगी के सबसे कीमती क्षण हैं, जिन क्षणों में मैं आपके सामने बैठी हूं।'

डॉ0 श्रीमाली मुस्करा दिये, फिर थोड़ा रुककर बोले – 'आप पूछिये मिस सूसन! जो आप पूछना चाहती हैं' . . .

फिर बोले – 'अच्छा रुकिये' . . .

और मुझे कागज-कलम लाने को कहा, जब मैंने कागज-कलम उनके सामने रख दिया, तो उन्होंने कलम उठाकर कागज पर कुछ लिखा और कागज अपने तकिये के नीचे रख दिया।

इसके बाद सूसन की ओर मुखातिब होकर बोले – 'आप कुछ पूछना चाहती हैं न! बोलिये।'

सूसन ने संकोच करते हुए कहा – 'डॉ0 श्रीमाली! आप आज्ञा दें, तो मैं अपने प्रश्न लिखकर दे दूं। प्रश्न मैं अपने साथ लिखकर लाई हूं। इन प्रश्नों को वायुयान में बैठे-बैठे ही लिख दिया था . . . और कहते-कहते उसने अपने बैग से एक समेटा हुआ पत्र निकाला और खोलकर मेरे हाथ में दे दिया। अंग्रेजी में उसमें तीन प्रश्न लिखे हुए थे–

1. चौदह जुलाई सन् उन्नीस सौ बासठ को मेरे जीवन में कौन सी प्रमुख घटना घटित हुई थी?
2. मेरा विवाह कब, कहां और किस प्रकार से होगा?
3. मेरे भविष्यकाल की आश्चर्यजनक घटना, जो कि मेरे जीवन में अविस्मरणीय बनी रहेगी?

मैंने वह पत्र गुरुजी के सामने रख दिया। गुरुजी ने सरसरी निगाह से उसे देखा और फिर बोले – 'सूसनं! एक और प्रश्न तुम्हारे मन में घुमड़ रहा है, उसे भी लिख लो।'

– 'नहीं गुरुजी! अब कोई प्रश्न नहीं है।'

– 'है भई! जो कहते हुए और लिखते हुए तुम्हें संकोच हो रहा है, पर संकोच करने की जरूरत क्या है, लिख लो उस प्रश्न को भी।'

सूसन ने एक नजर गुरुजी की तरफ देखा और आश्वस्त होकर पैन हाथ में लेकर तीन प्रश्नों के नीचे चौथा प्रश्न भी लिख दिया–

4. जिससे मेरा 'लव' चल रहा है, वह धोखा तो नहीं देगा?

'डॉ0 श्रीमाली ने सूसन के हाथ का लिखा कागज वहीं रहने दिया,

दो क्षण छत की ओर ताकते रहे, फिर तकिये के नीचे से वह कागज निकालकर मेरे हाथ में थमा दिया, जो सूसन के कागज देने से पहले लिखकर तकिये के नीचे रख दिया था।

कागज पर गुरुजी के हाथ की लिखावट थी और चार उत्तर लिखे हुए थे। पर आश्चर्य! ये तो उन्हीं प्रश्नों के उत्तर थे, जो सूसन ने पूछे हैं, उसी क्रम से विधिवत .....!

सूसन मुझसे भी ज्यादा चकित थी, जिस क्रम से सूसन ने प्रश्न पूछे थे, उसी क्रम से उन प्रश्नों के उत्तर थे, जबकि गुरुजी ने उत्तर लिखते समय प्रश्न पूछे ही नहीं थे, कागज तो बैग में था, निकाला ही नहीं गया था और चौथा प्रश्न तो बहुत बाद में अभी-अभी लिखा गया था ..... फिर इन प्रश्नों का पता गुरुजी को पहले से ही कैसे चल गया और उनके उत्तर भी पहले से ही लिखकर तैयार कैसे हो गये, जिसमें भूत और भविष्य दोनों ही कालों से संबंधित उत्तर थे!!

पंडितजी का जो पत्र था, उसमें इस प्रकार से लिखा हुआ था–

1. चौदह जुलाई सन् उन्नीस सौ बासठ को शाम चार बजकर बावन मिनट पर तुम्हारे माता-पिता की कार एक्सीडेंट में मृत्यु हो गई थी, जिसका अमिट प्रभाव तुम्हारे कोमल हृदय पर पड़ा है।
2. तुम्हारा विवाह इक्कीस मार्च सन् उन्नीस सौ अस्सी को न्यूयार्क में प्रसिद्ध धनी एवं सम्पन्न युवक से होगा, जिसका नाम 'वाल्डपीन' होगा।
3. सात फरवरी उन्नीस सौ चौरासी को प्रातः ग्यारह बजे के लगभग तुम्हारे साथ कार दुर्घटना होगी और कार पहाड़ से लुढ़क कर आठ सौ फीट नीचे गिरेगी। उस समय कार में तुम अकेली ही होगी, पर आश्चर्य यह कि आठ सौ फीट गहरे गड्ढे में कार गिरने पर भी तुम्हें खरोंच तक नहीं आयेगी, जबकि कार में बुरी तरह आग लग जायेगी।
4. जिससे तुम्हारा प्रेम सम्बन्ध चल रहा है, वह व्यक्ति आज से ठीक तीन महीने बाद जेल जायेगा और जेल से छूटने के बाद वह हमेशा-हमेशा

के लिए तुम्हें भुला देगा।

मैंने देखा, सूसन की आंखों में आंसू छलछला आये थे, चौथा प्रश्न का उत्तर पढ़ते-पढ़ते उसका गला भर आया था, पर उसकी आंखों के आंसुओं में जल के साथ-साथ आश्चर्य और कृतज्ञता भी थी — क्या ऐसा भी देवज्ञ हो सकता है, जो मेरे लिखे हुए प्रश्नों को पहले से जान ले और उसके उत्तर भी पहले से लिख कर रख ले, यह आश्चर्य और कृतज्ञता थी पूज्य गुरुजी के व्यवहार के प्रति, उनके स्नेह और सम्मान के प्रति।

सूसन ने अपनी आंखें पोंछीं, दो मिनट उसने अपने आपको संयत करने में लगाये, फिर डॉ0 श्रीमाली की ओर देखती हुए बोली — 'डॉ0 श्रीमाली, वास्तव में भविष्य द्रष्टा के रूप में आप अद्वितीय हैं। मैंने अपने प्रश्नों में जान बूझकर भूत और भविष्य दोनों से ही संबंधित प्रश्न रखे थे, जिससे मैं आश्वस्त हो सकूं और भूतकाल के बारे में मेरे प्रश्नों के आपने जो उत्तर दिये हैं, वे इतने सही और प्रामाणिक हैं, कि इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना व्यर्थ है।'

'भविष्य से संबंधित प्रश्नों के उत्तर भी मुझे बिलकुल सही लग रहे हैं, मेरे चौथे प्रश्न का जो उत्तर आपने दिया है, वह सत्यता के अत्यधिक निकट है, मेरा 'लवर' इन दिनों कुछ ऐसे ही माहौल से गुजर रहा है, जो कि उसके लिए कष्टकर है और यह संभव है, कि उसे अपनी की हुई गलती का दण्ड भोगना पड़े; डॉ0 श्रीमाली! इस सम्बन्ध में आपकी बात सच होती हुई लग रही है' . . . और कहते-कहते वह फफक पड़ी।

मेरे काफी प्रयत्नों से वह स्वस्थ हुई, मैं उसे दूसरे कमरे में ले गई, तब तक पंडितजी भी सायं की पूजा के लिए उठ गये थे। मैंने सूसन को कॉफी पिलाई, इधर-उधर की बातें की और यथासम्भव प्रयत्न किया, कि वह अपने दिल की वेदना को भूल जाये, कुछ समय बाद उसका मूड बिलकुल ठीक हो गया।

ठीक होने पर वह बोली — 'दीदी! डॉ0 श्रीमाली आदमी हैं या

फरिश्ता! बिना अपॉइन्टमेंट के भी मिलने पर इस व्यक्तित्व ने मुझे जो सम्मान और स्नेह दिया है, मैं उसे इस जीवन में नहीं भुला सकूंगी और मेरे प्रश्नों के जो सटीक उत्तर उन्होंने दिये हैं, इतने सटीक उत्तर डॉ0 श्रीमाली ही दे सकते हैं। वास्तव में तुम सौभाग्यशाली हो, कि उनके चरणों में बैठने का तुम्हें अधिकार मिला है .... और दुर्भाग्यशाली हूं मैं, कि मुझे आज ही जाना पड़ रहा है। जी चाहता है, कि मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर यहीं रह जाऊं, इन चरणों की सेवा करूं और अपने जीवन को धन्य करूं।'

वास्तव में ही यह सूसन नहीं बोल रही थी, उसके मन की भावनायें बोल रही थीं, उसके हृदय की श्रद्धा और स्नेह बोल रहा था।

रात की फ्लाइट से वह मजबूरन बंबई रवाना हो गई, क्योंकि दूसरे दिन उसे एक मीटिंग में भाग लेना आवश्यक था . . . और जाते-जाते वह गुरुजी के प्रति ढेर सारी श्रद्धा और विश्वास अपने मन में भर कर अपने साथ ले गई।

इस प्रकार की कई घटनायें एमिस की डायरी में अंकित हैं, जो कि एक से बढ़कर एक हैं, एक से एक मूल्यवान हैं, प्राणवान हैं, चेतनायुक्त हैं। मैं यदि अपनी और एमिस की डायरी के इन संस्मरणों को लिखने बैठूं, तो एक अदम्य पुस्तक बन जायेगी।

वास्तव में डॉ0 श्रीमाली का ज्योतिषीय ज्ञान अथाह है, उनके जीवन का एक-एक क्षण ज्योतिष, अध्यात्म और साधना के प्रति समर्पित है। जिन दिनों मैं डॉ0 श्रीमाली के पास था, उन्हीं दिनों ऑस्ट्रेलिया के श्री कपूर से मिलना हुआ था, जो तीन वर्षों बाद एक बार फिर डॉ0 श्रीमाली के दर्शन हेतु आये थे।

इससे पूर्व वे कुछ समय तक डॉ0 श्रीमाली के साथ रह चुके थे। मिलने पर उन्होंने बताया, कि इस आदमी में जबरदस्त आत्म-नियंत्रण और कार्यक्षमता है, पता नहीं यह व्यक्तित्व कब सोता है और कब उठ जाता है; जितना काम आज तक इसने अब तक के जीवन में किया है, उतना काम सौ व्यक्ति मिलकर भी नहीं कर सकते। डॉ0 श्रीमाली एक नाम नहीं, अपने

आप में एक संस्था का पर्याय बन गया है।

— और वास्तव में ही मैंने स्वयं भी यही अनुभव किया है, कि डॉ० श्रीमाली अपने आपके प्रति निर्मम, दयाहीन हैं, प्रातःकाल उठने से लगाकर रात्रि को सोने तक वे निरन्तर कार्य में लगे रहते हैं। आने वाले आगन्तुकों से भेंट करना, उनकी समस्याओं को सुनना, समाधान करना, पुस्तक लेखन, महत्त्वपूर्ण पत्रों के उत्तर आदि कई ऐसे कार्य हैं, जिनका निरन्तर उन्हें ही सम्पादन करना पड़ता है, पर फिर भी उनके चेहरे पर न तो थकावट के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं, न तनाव या परेशानी; निरन्तर उसी मुस्कुराहट के साथ वे कार्य करते रहते हैं, अविचल . . .

— और इसीलिए ज्योतिर्विदों ने उनको 'आधुनिक वराहमिहिर' कहा है, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है।

जीवन तो सभी व्यतीत कर सकते हैं

और करते भी हैं,

लेकिन जीवन यात्रा वही कर सकता है,

जो जीवन के मूल उत्स, मूल उद्गम को

पहिचानने की कोशिश करता है . . . .

और जिस क्षण यह कोशिश करने की

भावना उत्पन्न होती है,

उसी क्षण जीवन यात्रा प्रारम्भ हो जाती है।

यात्रा प्रारम्भ करते समय एक बात का

विशेषतः ध्यान रखना आवश्यक है,

कि मंजिल (लक्ष्य) दूर नहीं है,

उसे पाने के लिए तो मात्र

पहला कदम उठाने की आवश्यकता है,

जब पहला कदम उठ जाता है,

तब मंजिल खुद-ब-खुद पास आ जाती है।

जीवन यात्रा के लिए यह अनिवार्य नहीं है,

कि घर छोड़ कर दर दर भटका जाय,

क्योंकि जो कुछ भी व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है,

वह सब कुछ उसके अन्तस में ही तो है।

जीवन की वास्तविक यात्रा तो

'गुरु मिलन' से प्रारम्भ होती है

और उनमें ही एकीकृत हो कर पूर्ण हो जाती है।
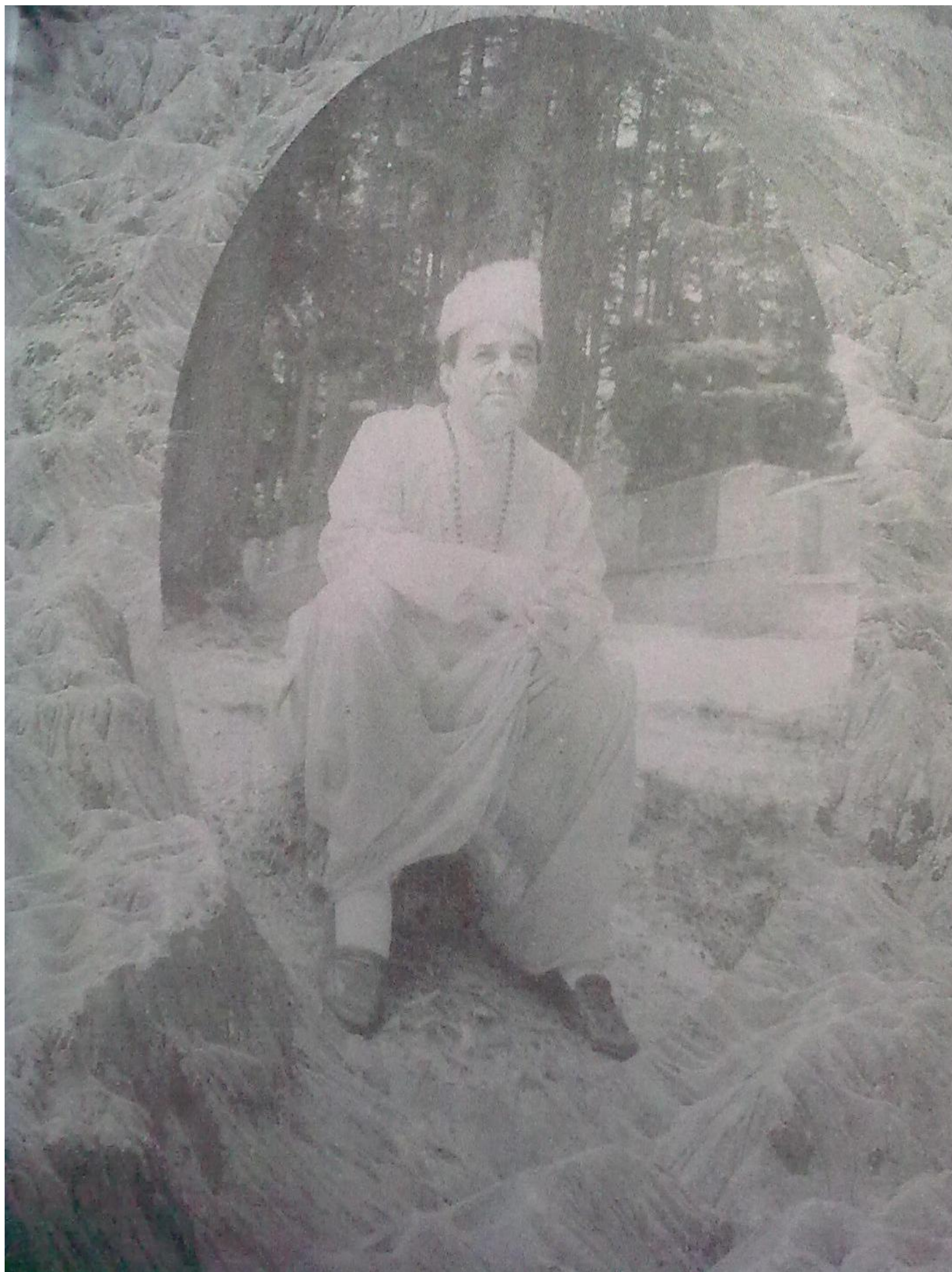
डॉ0 श्रीमाली का जन्म जोधपुर से साठ किलोमीटर दूर दुन्दाड़ा के पास खरंटिया नामक ग्राम में 21 अप्रैल को हुआ। उनके जन्म, बचपन और संक्षिप्त जीवन के बारे में जो कुछ जानकारी मिली है, उसके लिए मैं उनके शिष्यों व सम्बन्धियों का आभारी हूं।

डॉ0 श्रीमाली के पितामह धर्मभीरू और तांत्रिक विद्या के पारंगत थे। तंत्र के क्षेत्र में उन्होंने बहुत कुछ कार्य किया है और उनकी उपलब्धियां अपने आपमें आज भी महत्त्वपूर्ण हैं, अपने क्षेत्र में उनकी इज्जत थी और छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा उन्हें आदर और सम्मान के साथ देखता था।

डॉ0 श्रीमाली के पिता श्री मुलतानचंद जी सज्जन, सीधे, सरल और कर्मठ व्यक्ति थे; पुरुषार्थ उनके जीवन का मूल मंत्र था, उनके जीवन का प्रत्येक क्षण परिश्रम के साथ व्यतीत होता था, न वे फालतू समय खोते थे और न किसी को खोने देते थे; बालक नारायण पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा।

माता रूपादेवी सच्चरित्र, भली, धार्मिक एवं सुसंस्कारित महिला थीं। उनके जीवन का अधिकांश भाग पूजा-पाठ तथा धार्मिक, सामाजिक कार्यों में ही व्यतीत होता था। अपने पुरखों पर गर्व, सच्चरित्रता एवं जीवन मूल्यों के प्रति उनकी बड़ी आस्था थी। उन्होंने अपने सद्‌गुणों का विकास बालक में पूरी तरह से करने का प्रयत्न किया और सफल भी हुईं।

प्रातः दस बजकर इक्कीस मिनट के आसपास मधुर मंगलमय मुहूर्त में बालक का जन्म हुआ। बालक के जन्म से सात दिन पहले माता रूपादेवी को स्वप्न में शेषशायी नारायण ने दर्शन देते हुए कहा –

"मैं तुम्हारे घर में जन्म लेने वाला हूं, तुम शिशु का नाम 'नारायण' ही रखना।"

बालक के जन्म के समय गांव में वाद्ययंत्र बज रहे थे तथा स्त्रियां मंगलगीत गा रही थीं। इसके लिए उन्हें किसी ने प्रेरणा नहीं दी थी, अपितु वे स्वतः ही आत्मस्फूर्ती से गा रही थीं।

बालक के जन्म के सत्ताइसवें दिन ही एक अद्‌भुत घटना घटी, बालक खाट पर सो रहा था और मां आंगन में धूप सेंक रही थी। आधे घंटे बाद जब मां कमरे में आई, तो उसके पैरों तले से जमीन खिसक गई, उसका हृदय धक् से रह गया। उसने देखा, बालक नारायण सो रहा है और एक काला सर्प फन फैलाये उसके सिराहने बैठा हुआ है। मां को काटो तो खून नहीं, फिर भी आगे बढ़कर हाथ जोड़कर बोलीं – 'हे वासुकी! मेरे बालक की रक्षा कर।'

मां की आवाज सुनकर बालक जाग उठा और मचल पड़ा, इधर वासुकी सर्प भी एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना पलंग से नीचे उतर कर एक ओर सरक गया।

हिन्दू मान्यताओं के अनुसार उक्त घटना इस बात की ओर संकेत करती ही है, कि बालक में देवत्व का अंश है और आगे चलकर बालक अपने देवत्व के बल पर जन-साधारण की चेतना जगाने एवं उन्हें सत्प्रेरक बनाने में सहायक होगा।

बालक नारायण का अधिकांश लालन-पालन उसके ननिहाल 'फलौदी' से छः किलोमीटर दूर 'लोर्डिया' नामक ग्राम में हुआ। मामा 'श्री रामसुख जी' अत्यंत धर्मपरायण तथा यजुर्वेद के श्रेष्ठ अध्येता थे, अतः उनके संरक्षण में बालक की शिक्षा वेदाध्ययन से प्रारम्भ हुई और मात्र नौ वर्ष की उम्र में उसने पूरे यजुर्वेद का अध्ययन तथा सस्वर उच्चारण सीख लिया था, इसके साथ ही संस्कृत एवं व्याकरण का ज्ञान भी सीख लिया था। स्वयं मामाजी और अन्य लोगों को इनकी कुशाग्र बुद्धि पर आश्चर्य हो रहा था। इस छोटी सी आयु में जितनी तीव्रता और तत्परता से उसने वेदाध्ययन किया, वह अपने आप में सुखद आश्चर्य था।

बालक नारायण बचपन से ही दयालु एवं साधु प्रकृति के थे तथा पूरे परिवार के लाडले थे, हमेशा पूजा-पाठ करना, संध्या-वंदनोपरांत वेदाध्ययन करना, सस्वर तथा मधुर कंठ से शिव की स्तुति करना उन्हें प्रिय था। किसी को दुःख या विपत्ति में तो वे देख ही नहीं सकते थे, जब भी उन्हें ज्ञात होता, कि गांव में फलां बीमार है या कष्ट में है, तो स्वयं जाकर उसकी सेवा-सुश्रुषा करते, यथासंभव सहायता करते और सांत्वना देते। पशुओं के प्रति तो वे जरूरत से ज्यादा दयार्द्र रहते, घर में जो 'गौ' थी, उसकी अपने हाथों से सेवा करते, भूसा-पानी देते; नित्य पक्षियों को दाना, अपंग को भोजन तथा दुखियों की सेवा को उन्होंने अपना धर्म समझ लिया था, इसीलिए गांव में उनका नाम 'साधु बालक' पड़ गया था।

बारह वर्ष की आयु में ही उनका विवाह जोधपुर से सत्तर किलोमीटर दूर रोहट ग्राम के 'श्री प्रतापचंद जी' की सुलक्षणा पुत्री 'भगवती देवी' से हुआ। बालिका भगवती देवी स्वयं छोटी उम्र की होते हुए भी ईश्वर पूजा, भजन स्तुति आदि में जरूरत से ज्यादा रुचि लेती और जो उम्र खेलने-खाने की होती है, उस उम्र में वे घंटों श्रीकृष्ण की पूर्जा-अर्चना करती रहती तथा अपना ज्यादा से ज्यादा समय भजन-पूजन में लगाती।

विवाह के कुछ काल के अनन्तर बालक नारायण के पिताजी कुछ कारणों से 'लूनी' में आकर बस गये। लूनी ग्राम जोधपुर से तीस किलोमीटर

दूर है और थोड़ी सी आबादी है। यहां आने के बाद बालक नारायण को इच्छा से इन्हें स्थानीय विद्यालय में पढ़ने के लिए भर्ती कराया गया। उस समय अंग्रेजी तीसरी कक्षा से शुरु होती थी। तीन वर्ष तक लूनी में, फिर एक वर्ष लोर्डिया में, फिर जोधपुर की 'विद्याशाला स्कूल' में एक वर्ष तथा फिर आठवीं कक्षा 'लूनी विद्यालय' से पास की। इसके बाद दो वर्ष का शिक्षण उन्होंने 'फलौदी विद्यालय' से लिया और अच्छे अंकों से परीक्षा पास की, पर इस पूरे अध्ययनकाल में उनका वेदाध्ययन, पूजा-पाठ, जप-तप निरन्तर चलता रहा।

इन दिनों एक नई बात अनुभव हुई। एक दिन रविवार को वे स्नान कर पूजा करने बैठे ही थे, कि उनकी समाधि लग गई और यह समाधि लगभग साढ़े तीन घंटे रही। इस पूरी अवधि में उन्हें अपने शरीर का कोई भान नहीं रहा, साथ का सहपाठी जो इनके साथ रह रहा था, इन्हें इस प्रकार निश्चल बैठा देखकर घबरा गया; जब समाधि खुली, तब उसकी जान में जान आई।

इसके बाद कई बार पूजा स्थल पर पूजा के पहले या पूजा के बाद नारायण की समाधि लग जाती और घंटों लगी रहती। इस समाधि की अवस्था में उनका चेहरा एक अवर्णित प्रकाश से जगमगाता रहता, चेहरे के चारों ओर एक विशेष प्रकार का प्रभामंडल बन जाता।

शिक्षा के बाद नारायण वापिस लूनी आ गये और परिस्थितियों से विवश होकर अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि यह कार्य सर्वथा उनके लिए अनुकूल था। वह कोई ऐसा कार्य करना चाहते थे, जो समाजोपयोगी हो, जिससे समाज का निर्माण हो, समाज का हित हो और जिससे समाज के आधारभूत बालकों का चारित्रिक और नैतिक विकास हो सके।

परंतु इसके साथ ही साथ उनका ध्यान, पूजा-पाठ आदि का कार्यक्रम भी चलता रहा और अध्यापन के कार्य के बाद जो भी समय बचता, वह प्रभु चरणों में ही व्यतीत होता। उनकी इस स्थिति को देखकर घरवाले काफी

विचार करते, एक-दो बार पिता ने फटकारा भी, परंतु इन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, इनका कार्यक्रम इसी प्रकार से चलता रहा।

* * *

एक दिन शाम के समय जब वह घूमकर लौट रहे थे, तो एक स्थान पर काफी भीड़-भाड़ और हो-हल्ला सुनाई दिया, साथ ही आग की ऊंची-ऊंची लपटें भी दिखाई दीं। एक किसान के घर में आग लग गई थी और पास में घास का ढेर होने के कारण आग अत्यंत तीव्रता से फैल गई और समूचे घर को लपलपाती जीभ से अपने मुंह में ले लिया। किसान बाहर था, उसकी पत्नी अपने बच्चों को लेकर बाहर निकली, तब तक आग ने प्रचंड रूप धारण कर लिया, पर इस हड़बड़ी में किसान का एक आठ वर्षीय पुत्र झोपड़ी में ही रह गया था और जब किसान की पत्नी को ध्यान आया, तो वह चिल्ला उठी।

उसका क्रंदन पूरी भीड़ को झनझना गया, पर उस प्रचंड आग में कौन कूदे? यह संभव ही कहां था, क्योंकि जो भी उस आग में कूदता, उसे अपने प्राणों से हाथ धोना ही पड़ता। सारी भीड़ किसान की पत्नी का क्रंदन सुन रही थी, पर विवश थी; एक-दो नौजवानों ने आगे बढ़ने की हिम्मत की भी, पर आग तक जाते-जाते पुनः लौट आये, आग में घुसने की हिम्मत उनकी भी नहीं हुई। सबके चेहरों से यह स्पष्ट प्रतिध्वनित था, कि अब तक बच्चा जल गया होगा, समाप्त हो गया होगा— हो सकता है जीवित भी हो, पर आग में कूदे कौन? बैठे-बिठाये मौत से कौन खेले?

तभी उधर से नारायण निकले, मात्र दो क्षण रुके, परिस्थिति भापने में उनको समय नहीं लगा और देखते-देखते वह दौड़कर आग में घुस गये। एकबारगी तो पूरी भीड़ को जैसे सांप सूंघ गया हो, एक जवान नवयुवक, फूल सा कोमल बालक इस प्रकार धधकती आग में कूद गया ... अब क्या होगा? .... कैसे बचेगा वह?... वापिस क्या आ सकेगा? . . . आग के इस तांडव नृत्य में उसके बचकर आने की उम्मीद करना ही व्यर्थ

था . . . उफ् . . .!!

पर तभी भीड़ ने देखा, आग के भीतर एक धब्बा सा प्रकट हुआ, धब्बा कुछ बड़ा हुआ और लोगों ने देखा, कि नारायण हाथों में किसान के बालक को उठाये आग की प्रलयंकारी लपटों से जूझते बाहर निकल आये। बालक सुरक्षित था, पर इस अग्नि संघर्ष में नारायण का पूरा शरीर झुलस सा गया, उनके बाल और जगह-जगह से चमड़ी जल गई थी और पैरों में फफोले पड़ गये थे। बाहर आने पर लोगों ने लपककर उनके हाथों से बालक को ले लिया, पर इस अग्नि संघर्ष में नारायण बेहोश से हो गये थे।

इसके बाद लगभग पंद्रह दिनों तक नारायण को आराम करना पड़ा, तब जाकर उनके फफोले और जला हुआ भाग ठीक हो सका, पर इन पंद्रह दिनों में कितनी जलन, कितना दर्द और कितनी वेदना भोगी होगी, इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है, पर फिर भी उनके चेहरे पर न तो कोई शिकन थी और न व्यथा ही। उनको संतोष था, कि एक बच्चे की जान बचा दी है; उनको प्रसन्नता थी, कि एक मां को उसका पुत्र मिल गया है।

इस घटना से ही उनकी हिम्मत, उनकी मनोवृत्ति और परदु:ख-कातरता का ज्ञान सहज ही हो जाता है।

इस अवधि में साधना क्षेत्र के साथ-साथ नारायण में ज्योतिष के प्रति भी रुचि बढ़ी और उनका मन ज्योतिष के गूढ़ प्रश्नों को टटोलने लगा; यही नहीं, अपितु उनको भावीकाल ज्ञान स्वत: ही होने लगा। कई बार वह किसी साथी को देखकर अनायास ही बता देते, कि शाम को तुम्हारे साथ अमुक घटना घटित होने वाली है और उसी शाम को वह घटना उसी प्रकार से घटित हो जाती।

किसी परिचित महिला को जब उसके भूतकाल के गोपनीय अंश सुनाते, तो महिला दांतों तले उंगली दबा लेती, ऐसा एक बार नहीं सैकड़ों बार हुआ। उनकी कही हुई बातें आश्चर्यजनक रूप से सत्य सिद्ध होने लगीं, ऐसा लगने लगा, जैसे प्रभु का कोई विशेष आशीर्वाद उनको प्राप्त हो गया

हो। उनके आश्चर्यजनक परिवर्तन और भविष्य दर्शन को देख घर वाले भी आश्चर्य करते।

धीरे-धीरे नारायण की ख्याति बढ़ने लगी और दूर-दूर से लोग अपना भविष्य पूछने के लिए आने लगे। नारायण का अध्यापन के अलावा बाकी सारा समय लोगों का भविष्य बताने और उनके दुःख-दर्द को दूर करने में ही व्यतीत होने लगा।

पर नारायण अपने आपमें परेशानी अनुभव करने लगे, इस प्रकार से वह अपनी साधना से हटने लगे, साधना या पूजा-पाठ में जितना समय देना चाहिए, उतना वह नहीं दे पाते। इससे उनके मन की बेचैनी बढ़ गई और वह कोई ऐसा उपाय ढूंढ़ने लगे, जिससे वह अपनी साधना में पूरा समय दे सकें। उस समय की मनोदशा का जो वर्णन डॉ0 श्रीमाली ने अपनी डायरी में किया है, उसे ही मैं नीचे की पंक्तियों में दे रहा हूं–

"बहुत अधिक घुटन महसूस कर रहा हूं . . . ठीक है मैं खाता हूं, पीता हूं, विद्यालय जाता हूं और वे सभी कार्य करता हूं, जो मुझे करने चाहिए, पर उत्साह नहीं है। हृदय में एक अजीब तरह की बेचैनी घुमड़ रही है, एक अजीब तड़प तन-मन में समाई हुई है, जो कि संन्यासवत् जीवन के लिए प्रेरित कर रही है।

यह भी ठीक है, कि ईश्वर कृपा से भविष्य दर्शन ज्ञान स्वतः ही हो गया है और व्यक्ति को देखते ही या उसका फोटो देखते ही उसके भूतकाल और भविष्यकाल के बारे में स्वतः ही मेरी आंखों के सामने चित्र तथा बिंब उभरने लग जाते हैं .... और मैं जो कुछ भी देखता हूं जो कुछ भी कहता हूं, वही सत्य हो जाता है। इसी से भीड़ बढ़ गई है, सुबह से ही लोग आने लग जाते हैं और रात गये तक लोग अपनी परेशानियों को लेकर आते रहते हैं – इससे मेरा व्यक्तिगत जीवन नष्ट सा हो गया है, घर में भी अव्यवस्था सी हो गई है, परिवार का व्यक्तिगत जीवन छिन्न-भिन्न सा हो रहा है . . .

– क्या मेरे जीवन का यही चरम बिंदु है?

— क्या मुझे जीवन की पूर्णता यही समझ लेनी चाहिए?

— क्या इन लोगों के भविष्य-वाचन में ही मेरे जीवन की सार्थकता हो पायेगी?

. . . नहीं, नहीं, यह तो कुछ भी नहीं . . . यह तो प्रारम्भ है, इसे प्रारम्भ ही समझना चाहिए . . . यह अध्यापन . . . यह गृहस्थी . . . यह प्रशंसा . . . सम्मान . . . कुछ भी तो नहीं। मैं ब्राह्मण पुत्र हूं, मेरे कुल की मर्यादा अज्ञानान्धकार को हटाना है . . . लोगों को रोशनी देना है . . . उनको सत्पथ पर अग्रसर करना है और भारत की लुप्त विद्याओं को खोज निकालना है। लोग आज तंत्र-मंत्र, ज्योतिष पर हंस रहे हैं, इसे पाखण्ड और ढोंग समझ रहे हैं . . . मुझे इस क्षेत्र में गहराई के साथ घुसना है . . . परखना है . . . देखना है, कि इस देश में तंत्र-मंत्र कुछ है भी या मात्र कल्पना ही है?

— क्या मंत्रों में अमोघ शक्ति है?

— क्या अब भी मेरे देश में ऐसे ऋषि और साधु हैं, जिन्हें इस विद्या का पूर्ण ज्ञान है?

मुझे ऐसे विशिष्ट साधुओं, ऐसे शास्त्र-ग्रन्थों को खोजना होगा, इस विद्या को प्राप्त करना होगा और इस देश के लोगों के सामने पूर्णता के साथ रख देना होगा, उन्हें सही अर्थों में मंत्र-तंत्र बताना होगा, कि मंत्रों के माध्यम से असंभव को भी संभव किया जा सकता है; ज्योतिष के उन सूत्रों को खोज निकालना होगा, जिनके माध्यम से सही एवं अचूक भविष्य दर्शन संभव हो सकता है।

इसके लिए त्याग जरूरी है, कठोर जीवन और श्रम जरूरी है, शरीर को तिल-तिल जलाना जरूरी है — जीवन में सुख, आराम तथा भोग-विलास को तिलांजली देना जरूरी है। मुझे कुछ करना चाहिए, इस प्रकार से जीवन बिताना व्यर्थ है ....

यद्यपि इस समय मुझे सब कुछ प्राप्त है, माता-पिता का स्नेह, पत्नी

का प्रेम, पुत्र की किलकारी, मित्रों का हंसी-मजाक, बड़े-बूढ़ों का अशीर्वाद, लोगों द्वारा सम्मान, उत्तम नौकरी, श्रेष्ठ धन-लाभ . . . पर क्या इसी मायाजाल में उलझकर पड़ा रहूं . . ?

निश्चय ही जंगल का जीवन इसके विपरीत होगा . . . लगी-लगाई नौकरी छोड़ना क्या बुद्धिमानी होगी? क्या पत्नी को चिरवियोग में डालकर जंगल-जंगल भटकना उचित होगा . . . उफ! क्या करूं? कुछ समझ में नहीं आ रहा है, कुछ भी निर्णय नहीं ले पा रहा हूं?''

इस घुटन और अन्तर्द्वन्द्व में नारायण काफी समय तक रहे, वह किसी एक निर्णय पर नहीं पहुंच पा रहे थे। उनके सामने दो मार्ग थे, एक तरफ गृहस्थ था . . . पत्नी, पुत्र, माता-पिता, भाई-बहिन थे; दूसरी ओर कुछ करने की छटपटाहट थी, मंत्र शास्त्र को पुनर्जीवित करने की चाहत थी, इस दुनिया में कुछ कर दिखाने की भावना थी, वह इस जीवन की सार्थकता चाहते थे और नित्य प्रति मिलता सम्मान, उनकी विचारधारा इस दूसरे पथ का अवलंबन ही चाहती थी। उनके मन में प्रतिध्वनि थी–

मौत उसकी है जिसका करे जमाना अफसोस,
यों तो दुनिया में सभी आते हैं मरने के लिए।

एक दिन प्रातःकाल का समय था, नारायण प्रातःकाल वायु सेवन हेतु भ्रमण कर घर लौट रहे थे। उनके मन में ये सारे प्रश्न आलोड़ित-विलोड़ित हो रहे थे, पूरा मन एवं मस्तिष्क आंदोलित था और इस मानसिक अंतर्द्वन्द्व में वह अपने ही विचारों में बढ़े जा रहे थे, कि उनका पैर एक लिजलिजे जंतु पर पड़ा; चौंककर पैर हटाया तो देखा – सामने एक काला सर्प फन फैलाये खड़ा है, उसकी पूंछ पर अनायास ही पैर पड़ गया था, दो क्षण वह फन फैलाकर घूरता रहा और तीसरे ही क्षण वह सीधा-सपाट हो एक तरफ को सरक गया।

डॉ0 श्रीमाली की नजरें ऊपर उठीं, तो एक साधु को अपने सामने

खड़ा देखा – गौर वर्ण, उच्च एवं भव्य ललाट, आकर्षक मुद्रा, ओज एवं कांतिपूर्ण चेहरा, मंद-मंद मुस्कुराता हुआ सा . . . एक चुम्बकीय व्यक्तित्व . . . डॉ0 श्रीमाली के पैर वहीं जड़ से हो गये – वह साधु दो कदम भरकर पास आये और बोले – 'परेशान हो नारायण?'

नारायण कुछ बोले नहीं, किसी साधु से भेंट का यह लगभग पहला मौका था .... साधु को मेरे नाम का पता कैसे चला?

नारायण यह सोच ही रहे थे, कि साधु फिर बोले – 'परेशान न हो, तुम्हारा जीवन निश्चित है, तुम्हारा मार्ग प्रशस्त है, तुम्हारे जीवन का एक-एक क्षण कीमती है, उसे यों सोच-विचार में व्यतीत करना उचित नहीं है, तुम्हारा जीवन केवल परिवार के लिए ही नहीं है, अपितु पूरे देश और विश्व के लिए है। तुम्हें हिम्मत करके आगे कदम बढ़ाना है, ज्योतिष को सही स्थान पर स्थापित करना है, मंत्र-तंत्र जो लुप्त हो रहे हैं, उन्हें पुनर्जीवित करना है और संसार को इस क्षेत्र में एक नई दिशा-दृष्टि देनी है। इसके लिए कर्म-क्षेत्र तुम्हारा घर नहीं, संन्यासवत् जीवन है . . . जितनी ही जल्दी इस सम्बन्ध में निर्णय ले लोगे, उतनी ही जल्दी तुम्हारे हक में ठीक रहेगा।'

साधु का एक-एक शब्द नारायण के दिमाग में हथौड़े की तरह चोट कर रहे थे, उनको रास्ता मिल गया था, उनके मन में जो अंतर्द्वन्द्व चल रहा था, वह एकबारगी ही मिट गया और उनका भावी जीवन अपने आप ही स्पष्ट हो गया।

नारायण ने साधु के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए नजरें ऊपर उठाईं, तो वहां कोई नहीं था . . . एक क्षण पहले साधु खड़े थे, बातचीत की है और दूसरे ही क्षण अदृश्य . . . नारायण चकित और हतप्रभ रह गये। इधर-उधर देखा, पर साधु का कहीं अता-पता नहीं था, पर इससे उनका भावी जीवन स्पष्ट और प्रशस्त हो गया था।

नारायण घर आये, उनका चेहरा शांत और निर्विकार था; इतने दिनों तक हृदय में जो तूफान मचल रहा था, वह शांत हो गया था। उन्होंने निश्चय

कर लिया, कि मुझे संन्यावत् जीवन धारण करना ही है, हिमालय में नहीं जा सका तो भी मानसिक संन्यास तो धारण कर ही सकता हूं; मुझे भविष्य में जो कुछ भी मिल सकेगा, इसी प्रकार मिल सकेगा . . . और इस कार्य के लिए तिथि मन-ही-मन निश्चित कर ली; तब तक पत्नी को समझाना था, मां के ममत्व से जूझना था, पिता के वात्सल्य से मुक्ति पानी थी . . . पर

परेशानियों को गर तू दे चुनौती,
मंजिल खुद-ब-खुद तेरे पास आयेगी।

मंजिल की ओर

मंजिल की प्राप्ति तो केवल
दृढ़ प्रतिज्ञ पुरुषार्थियों को ही होती है,
क्योंकि जीवन यात्रा का निश्चय कर
मंजिल की ओर बढ़ जाना
कोई सुगम क्रिया नहीं है।
अनेकों प्रकार की मुश्किलों का
सामना करना पड़ता है
और सबसे बड़ी परीक्षा होती है
धैर्य और दृढ़ता की।
ऐसे अनेक मोड़ आते हैं जीवन में,
जब कदम डगमगा उठते हैं,
मुश्किल हो जाता है एक भी पग आगे बढ़ाना
और तब इस दृढ़ता और धैर्य के
संकल्प का मूल आधार
दांव पर लग जाता है।
यदि गहनता से सोचोगे,
तब तुम्हें इस बात की वास्तविकता का
बोध स्वतः ही हो जायेगा
और फिर तुम ससम्मान बचा लोगे इसे
और अपने आप तुम्हारे कदम बढ़ चलेंगे
मंजिल की ओर . . . . .

गृहस्थ में रहकर संन्यासवत् जीवन जीना जितना आसान समझा था, वास्तव में वह उतना ही कठोर एवं अग्नि परीक्षा के समान सिद्ध हुआ। डॉ० श्रीमाली ने दो-तीन दिनों में अपने आपको तैयार किया और एक दिन अपनी पत्नी को सारी बात खुलासा कह देना ही ठीक समझा।

शाम का समय था, खा-पीकर डॉ० श्रीमाली पत्नी के साथ बैठे थे, इधर-उधर की चर्चा हो रही थी, अचानक बात काटकर श्रीमाली जी बोले – 'एक बात कहना चाहता हूं, कई दिनों से मन में घुमड़ रही है; ऐसा लग रहा है, कि जब तक मैं कहूंगा नहीं, तब तक चैन नहीं मिल सकेगा।'

पत्नी ने बड़ी-बड़ी आंखें ऊपर उठाईं, उसकी आंखों में यौवन की ललाई थी, तारुण्य का ओज था और पति संग का आह्लाद; भोले-भाले चेहरे को देखने पर डॉ० श्रीमाली डगमगा गये, सोचा – 'इस बेचारी ने अभी तक अपने जीवन में देखा ही क्या है! बाल्यावस्था की ड्योढ़ी को पारकर तरुणाई के आंगन में कदम रखा ही है, ये ही तो वे दिन होते हैं, जब वह

पति-साहचर्य की कामना करती है, हंसने-हंसाने के ये ही तो दिन हैं, खिलखिलाने की यही उम्र है, क्या मैं इसकी हंसी-खुशी पर ताला लगा दूं? क्या मुझे अधिकार है, कि इसके यौवन की उमंगों पर अंगारे बिछा दूं? इसकी मुस्कुराहट को कैद कर दूं ..... और दे दूं अंतहीन उदासी . . . लम्बी प्रतीक्षा . . . पति वियोग की मानसिक यंत्रणा और अटूट अश्रुधारा . . . उफ्!'

— 'क्या हुआ? आप कभी-कभी कहते-कहते क्यों रुक जाते हैं? बोलते-बोलते क्या सोचने लग जाते हैं? आधी बात कहकर ही चुप क्यों हो जाते हैं? शायद आप मुझे कुछ कहना चाहते हैं और कह नहीं पाते . . . कोई खास बात है क्या?'

डॉ0 श्रीमाली दो मिनट चुप रहे, फिर धीरे-धीरे बोले — 'हां! तुम ठीक कह रही हो, मैं कई दिनों से तुमसे एक बात कहना चाहता था, पर कह नहीं पा रहा था, कहते-कहते मेरी जबान रुक जाती है और आज भी मैं कहना चाहकर भी नहीं कह पा रहा हूं।'

— 'आप बिना संकोच कहें, आपके सुख में ही मेरा सुख निहित है . . . आप जो कुछ कहेंगे, मेरी और अपनी सुख-सुविधा के लिए ही कहेंगे। फिर कहने में संकोच क्या और हिचकिचाहट क्या?'

— 'मैं सोचता हूं, कि मुझे घरबार छोड़ देना चाहिए, यह जीवन मुझे अनुकूल नहीं लगता, इस जीवन का एक-एक क्षण मुझे डंस रहा है, मैं चाहता हूं, कि मेरी वास्तविक मंजिल जिधर है, उधर ही जाऊं .... और मेरी वास्तविक मंजिल संन्यासवत् जीवन है — मैं कुछ समय के लिए मानसिक संन्यास लेना चाहता हूं और उन साधुओं तथा ऋषियों के चरणों में बैठकर कुछ सीखना चाहता हूं, जो इस क्षेत्र में अद्वितीय हों।' — एक ही सांस में डॉ0 श्रीमाली ने अपने मन की बात कह दी।

दो क्षण पत्नी मुंह ताकती रही, उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था, कि एक तरुण यौवनवान पुरुष के मन में संन्यासवत् जीवन जीने की इच्छा हो सकती है, बोली — 'ऐसा मजाक मत कीजिये, यह उम्र संन्यासवत् रहने

और पत्थरों पर सोने की नहीं है' . . .

— 'पर मैं पूरी गंभीरता के साथ अपने निश्चय को तेरे सामने दोहरा रहा हूं।'

पत्नी को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ, सामने पति का चेहरा सख्त, दृढ़ निश्चय सम्पन्न और ओजपूर्ण था, उसकी आंखों में विचारों को साकार करने की दृढ़ता थी . . . यह सब कुछ देखकर पत्नी की आंखें डबडबा आई और दूसरे ही क्षण दोनों आंखों से अश्रुधार बहने लगी।

दो क्षण डॉ० श्रीमाली चुप रहे, फिर बोले — 'क्या तू ऐसा समझती है, कि मुझे इस घर-गृहस्थी के चक्कर में ही जीवन बिता देना चाहिए? क्या मेरे जीवन की उपलब्धि इतनी ही रहेगी? क्या मेरा कार्य क्षेत्र इतना संकीर्ण रहेगा? क्या मुझे अपने व्यक्तित्व के परिवेश को व्यापकता नहीं देनी चाहिए?'

— 'आप जो कह रहे हैं ठीक है, पर क्या यह उचित है, कि आप इस गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों से मुंह मोड़ लें? मैं तो अपनी जवानी के वर्ष आपकी इस झोली में हमेशा-हमेशा के लिए डाल दूंगी, पर क्या मां के प्रति आपका कोई कर्त्तव्य नहीं है? मैं तो अपने दिल पर पत्थर रखकर आंसुओं को अन्दर ही अन्दर पी लूंगी, पर इस बच्चे को पिता का दुलार कहां से लाकर दूंगी? मैं तो इस यौवनकाल में भी संन्यासीवत् जीवन जीने का प्रयत्न कर लूंगी, पर बूढ़े पिता की आंखों के आंसू कौन पोंछेगा? इसमें मेरा क्या कसूर है?' . . . और दुःख के आवेग में वह फफक पड़ी।

डॉ० श्रीमाली एकबारगी ही हिल गये — 'वास्तव में ही यह सही कह रही है, इसका क्या कसूर है? मुझे यौवन काल में ही इसको संन्यासी बनाने का क्या हक है? इसकी भरी-पूरी झोली में वेदना, अश्रु और सिसकारियां देने का क्या अधिकार है?'

उनका मन दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं में उलझ गया . . . भावना और कर्त्तव्य का परस्पर संघर्ष था, पर इस संघर्ष में कर्त्तव्य

ही विजयी हुआ।

डॉ0 श्रीमाली बोले – 'तुम ठीक कहती हो, मुझे कोई अधिकार नहीं है, कि तुम्हारी हंसी को छीनकर उसकी जगह चीत्कार भर दूं . . . पर . . . पर यह बता दूं, कि मैं यहां रह कर भी सुखी नहीं हो सकूंगा . . . मेरी आत्मा को चैन नहीं मिल सकेगा . . . मुझे ऐसा लगेगा, कि जैसे मैं तिल-तिल कर अपने जीवन को बरबाद कर रहा हूं . . . मुझे ऐसा अनुभव होगा, जैसे मैंने इस आमोद-प्रमोद की बलिवेदी पर अपने जीवन के लक्ष्य को बलिदान कर दिया हो; मेरी आत्मा . . . मेरा देश . . . मेरी आने वाली पीढ़ियां कभी भी मुझको माफ नहीं करेंगी।'

पत्नी निर्निमेष दृष्टि से उनके चेहरे की ओर ताक रही थी, उनके प्रत्येक शब्द बर्छी की तरह आघात कर रहे थे, पर एक क्षण के अंतराल में ही उसने निर्णय ले लिया, बोली – 'आप जरूर जाइये, मेरी तरफ से कोई रुकावट नहीं होगी, बड़े कार्य के लिए छोटे-छोटे कई स्वार्थ त्यागने ही पड़ते हैं। मैं जानती हूं, आप आराम और मौज-मस्ती की जिन्दगी छोड़कर कठिनाई और संघर्ष की जिन्दगी जीने जा रहे हैं, जो भी दु:ख, वियोग और कष्ट होगा, उसे मैं हंसते-हंसते झेल लूंगी' . . . और कहते-कहते उसकी आंखों में एक विशेष प्रकार की चमक आ गई थी।

डॉ0 श्रीमाली के लिए एक घाटी पार हो गई थी, पर अभी एक और बाधा थी, वह थी मां की स्वीकृति। वह मां, जिसके लिए नारायण सब कुछ था, जो थोड़ा विलम्ब से आता, तो उसका कलेजा धक् से रह जाता।

दूसरे दिन डॉ0 श्रीमाली ने मां के सामने सारी बात खुलकर स्पष्टता के साथ रख दी और यह भी प्रार्थना की – 'मुझे रोका नहीं जाय, केवल मां के ममत्व की कीमत पर मेरे भावी पथ को धूमिल नहीं किया जाय, निश्चय ही मेरे जीवन में मां की सेवा से बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है और यदि आप स्वीकृति नहीं देंगी, तो मैं नहीं जाऊंगा, पर मेरा यह शरीर ही आपके आस-पास विचरण करेगा, मेरी आत्मा यहां नहीं होगी और मुझे

विश्वास है, एक भारतीय माता की तरह आप मुझे मेरे कर्त्तव्य की ओर बढ़ाने में सहायक होंगी।'

काफी कुछ कहने-सुनने के बाद मां ने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर जाने की स्वीकृति दे दी। यही भारतीय परम्परा थी, एक भारतीय युवक आराम और मौज-मस्ती की जिन्दगी छोड़कर कठोर जीवन जीने के लिए निकल पड़ा था; रजाइयों और पलंगों पर सोने वाला नवयुवक धरती के बिस्तर पर सोने के लिए चल पड़ा था, आराम को छोड़कर संघर्षों की राह पकड़ ली थी, खाने-पीने को छोड़कर भूख-प्यास को गले लगाने के लिए उतावला हो गया था . . . और इस त्याग ने . . . इन संघर्षों ने नारायण को 'नारायण' बनाया, डॉ0 श्रीमाली को 'गुरुजी' बनाया और आज के युग में मंत्र शास्त्रों के अध्येता के रूप में प्रतिस्थापित किया, ज्योतिष के क्षेत्र में अभिनव वराहमिहिर सिद्ध किया।

डॉ0 श्रीमाली का लक्ष्य बना — मंत्र-तंत्र के बारे में पूर्णता प्राप्त करना, उस लुप्त ज्ञान को जनता के सामने रखना, जिसे भुला दिया गया है या जिस पर से विश्वास उठ गया है। यह ज्ञान उन्हीं साधुओं के पास है, जो मोह, माया, ममता से दूर हैं, जिन्हें इस संसार से कोई लेना-देना नहीं है, जिनका पूरा जीवन अरण्य में बीता है — और इस प्रकार के साधु या विशिष्ट व्यक्तित्व हिमालय के गर्भ में ही संभव है।

लेकिन डॉ0 श्रीमाली को अपने गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों का बोध भी था, पहले उन्होंने हिमालय में तथा जंगलों में घूम-घूम कर उनको ढूढ़ने का निर्णय लिया, किन्तु ऐसा करना उनकी आत्मा ने स्वीकार नहीं किया और घर में ही रहकर संन्यासवत् जीवन व्यतीत करने का निश्चय लिया तथा आवश्यक होने पर ही कुछ दिनों के लिए हिमालय में विचरण करने के लिए भी निर्णय लिया। उनके इस निश्चय को कार्य रूप में परिवर्तित किया एक तेजस्वी संन्यासी ने जिसने डॉ0 श्रीमाली को एक ऐसी साधना सम्पन्न करायी, जिसके द्वारा वे मानसिक रूप से कहीं भी जा सकते हैं और जिस किसी भी साधु, संन्यासी, योगी या जिससे भी चाहें मानसिक रूप से सम्पर्क

स्थापित कर उससे वार्तालाप कर सकते हैं, सीख सकते हैं, सिखा सकते हैं। इस साधना की तंत्रात्मक प्रक्रिया भी उस संन्यासी ने डॉ0 श्रीमाली को सम्पन्न करायी, जिसके कारण ये मानसिक रूप से जिससे भी सम्बन्ध स्थापित करेंगे उसे यही लगेगा कि, वह डॉ0 श्रीमाली से प्रत्यक्ष रूप में मिल रहा है। डॉ0 श्रीमाली ने तंत्रात्मक प्रक्रिया ही अपनाना ज्यादा श्रेयस्कर समझा, क्योंकि कुछ ऐसे लोग भी थे, जो किसी विशिष्ट साधना के जानकार तो थे, किन्तु पूर्णतः मानसिक रूप से सम्पर्कित होकर सिखाने या समझाने की क्रिया में सक्षम नहीं थे।

डॉ0 श्रीमाली का लक्ष्य हिमालय ही था, पर इससे पूर्व वे अरावली को छान लेना चाहते थे। अरावली पर्वत के गर्भ में समया हुआ है 'आबू', जो कि अत्यंत सुन्दर ग्रीष्मकालीन विश्रामस्थल है, ग्रीष्मकाल में हजारों-लाखों सैलानी आबू पर घूमने आते हैं। इसका नाम 'अर्बुदा देवी' के नाम पर पड़ा, जो कि तंत्र क्रियाओं की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं; इसके अतिरिक्त इस अंचल में कई विशिष्ट साधु, तपस्वी, महात्मा घूमते ही रहते हैं। शायद इनमें से ही कोई विशिष्ट व्यक्ति मिल जाय . . .

डॉ0 श्रीमाली ने जब संन्यासवत् जीवन धारण किया, तब एक कुरता तथा धोती पहने हुए थे और एक धोती तथा कुरता थैली में था, इसके अलावा रुपया-पैसा कुछ भी साथ न रखने का निश्चय किया था। उनका निश्चय यही था, कि न तो संग्रह किया जायेगा, न लोभ भावना रखी जायेगी, करपात्री बनकर मधुकरी वृत्ति से जीवन व्यतीत किया जायेगा।

आबू के मध्य में 'नखी तालाब' स्थापित है, कहते हैं, पांडवों ने इस सुंदर तालाब को अपने नखों से खोदकर बनाया था, इसीलिए इसका नाम 'नखी तालाब' पड़ गया। इसके आगे चलने पर 'टाड रॉक' तथा 'गौमुख' आते हैं, इसके बाद वशिष्ठ आश्रम आता है। यात्री बिना हिचकिचाहट के इस आश्रम तक तो आते हैं, पर इसके आगे घनघोर जंगल है, उधर जाने की कोई हिम्मत नहीं करता, परन्तु वहां पर डॉ0 श्रीमाली ने सुना, कि उस अरण्य में कई पहुंचे हुए साधु रहते हैं, जो संयोगवश मिल जाते हैं।

अघोरी बाबा

इस अरण्य में घूमते-घामते एक दिन डॉ0 श्रीमाली को एक 'अघोरी बाबा' मिल गये, जो कि तांत्रिक क्रियाओं के विशिष्ट जानकार थे। पैरों तक लंबी जटा, भारी डीलडौल, ऊंचा एवं भरा हुआ शरीर, बड़ी-बड़ी रक्तिम आंखें और निरन्तर कुछ-न-कुछ बुदबुदाने वाले ये अघोरी बाबा अपने आप में विलक्षण जीव थे। डॉ0 श्रीमाली ने अपनी डायरी में एक स्थान पर इनका जिक्र किया है-

''बड़ा विलक्षण एवं विचित्र व्यक्तित्व है 'अघोरी बाबा' का . . . लंबा-चौड़ा डीलडौल, उन्नत एवं उभरा हुआ ललाट, तेजस्वी चेहरा और उस पर दिप्-दिप् करती धधकती हुई दो आंखें, जिसके डोरे हर समय लाल सुर्ख बने रहते, विशाल वक्षस्थल, रोमयुक्त हाथ-पैर और नंग-धड़ंग शरीर . . . एक बार कोई देख ले, तो गश आ जाय, मुंह से निरन्तर बड़बड़ाते हुए . . . मैंने जब उन्हें देखा, तो विश्वास ही नहीं हुआ, कि ऐसा भी खुरदरा व्यक्ति हो सकता है; बोलता तो जैसे फटे बांस की आवाज आ रही हो; गालियों का तो पूरा एक खजाना भरा हुआ था इस औघड़ के पास, ऐसी चुन-चुनकर गालियां देता, कि सुनने वाला सन्न रह जाता।

पहली बार जब मैंने उन्हें देखा, तो यही भान हुआ, कि इसके पास रहने में खतरा ही खतरा है, लाभ तो कुछ हो ही नहीं सकता; पर शायद विधाता को कुछ और ही मंजूर था, जो निरन्तर मुझे इसी पथ पर ठेल रहा था, जो कि उबड़-खाबड़, डरावना और तकलीफों से भरा हुआ था।

मुझे देखते ही वह चिल्लाया – 'आक् हा . . . आ गया! तू ठीक आया . . . मजा आ गया . . . और फिर जांघ पर हाथ मार-मार कर चिल्लाने लगा– आऽजा . . . आऽजा . . . अब कुछ हुआ . . . कुछ दिन आराम से बीतेंगे' . . . फिर जोरों से इस प्रकार से हंसने लगा मानों रुकने का नाम ही नहीं लेगा और इस प्रकार से उसने मुझे डरा ही दिया।

मैं इस औघड़ से लगभग चालीस कदम दूर था, मेरी आगे बढ़ने की हिम्मत ही नहीं हो रही थी, मैं लौटना ही चाहता था, कि वह आगे बढ़ आया। मैं उसको अपनी ओर आते देख रहा था, पर मेरे पैर जड़वत हो गये थे, चाहते हुए भी न तो मैं मुड़ पाया और न ही लौट सका; ऐसा लगा जैसे मुझे कीलित कर दिया हो। सुना था, कि अजगर की आंखों में एक कशिश, एक आकर्षण, एक खिंचाव होता है, जो शत्रु को अपनी ओर जबर्दस्ती खींच लेता है। मुझे भी उस समय वह औघड़ अजगर के समान ही लगा, मैं समझ गया, कि मेरी मृत्यु सन्निकट है, पर इस प्रकार, इस स्थिति में मेरी मृत्यु हो जायेगी, ऐसा नहीं सोचा था।

धीरे-धीरे कदम भरता हुआ वह मेरे पास आया और मुझे धरती पर बिठा कर पास में ही जमीन पर बैठ गया . . . मैं यंत्र-चालित सा खड़ा था, उस समय मुझे अपना भान था ही नहीं – लगभग दस मिनट ऐसे ही बीते होंगे, ये दस मिनट मेरे लिए दस वर्षों के समान लम्बे लग रहे थे।

इन दस मिनटों में वह बराबर मेरी आंखों में ताकता रहा, मैं जड़वत उसकी आंखों में बराबर झांक रहा था। धीरे-धीरे उसकी आंखों के भाव बदले, पहले घृणा, जुगुप्सा फिर आश्चर्य और बाद में स्नेह के रंग तैर गये; जो आंखें आग बरसा रही थीं, अब उनमें स्नेह झलक रहा था।

इसके साथ मैं चार महीने रहा और इन चार महीनों में इसने मुझे तंत्र साधना का प्रारम्भिक ज्ञान दिया। यद्यपि यह औघड़ तंत्र क्षेत्र में विशिष्ट था तथा उच्चतम साधना से दीप्त था, परन्तु मैं इस क्षेत्र का नौसिखिया था, अत: उच्च साधना के योग्य नहीं था, शायद इसीलिए मुझे उच्चस्तरीय साधना नहीं दे रहा था। बाद में लगभग छ:-सात वर्षों बाद इससे फिर मुलाकात हुई थी, तब इसने तांत्रिक क्षेत्र में वे साधनायें और अमूल्य सिद्धियां सिखाई थीं, जो दुर्लभ कही जा सकती हैं।

एक दिन रात्रि के लगभग आठ-नौ बजे होंगे, औघड़ मुझसे बोला – 'चल! आज श्मशान जगावें।'

'श्मशान जगाना' जैसा शब्द पहली बार सुना था, उत्सुकता थी ही,

भी 'हां' भर दी। लगभग ग्यारह बजे वह औघड़ और मैं श्मशान गये।

श्मशान बिल्कुल शांत और भयावह सा लग रहा था, हवा सांय-सांय चल रहीं थी, जिससे भयानकता और बढ़ गई थी, औघड़ ने श्मशान के बीचों-बीच लकड़ी से एक घेरा खींच लिया और उसमें मुझे बिठाकर खुद भी बैठ गया। कुछ समय बाद उसने मंत्र पढ़ना शुरू किया, तो देखा कि चारों तरफ रंग-बिरंगे कपड़े पहने सैकड़ों नर-नारी नाच रहे हैं, जो कि आम भाषा में 'भूत' कहे जाते हैं; सभी के चेहरे अजीब और विकृत थे।

कुछ समय तक तो मैं देखता रहा, पर प्राणों में भय का संचार बढ़ गया, शरीर थर-थर कांपने लगा और दांत बजने लगे। औघड़ ने जब मेरी यह स्थिति देखी, तो चिन्ता लगी, कि कहीं यह बालक इन डरावने दृश्यों को देखकर मर न जाय, अतः तुरंत उसका समापन किया और मुझे लेकर अपनी झोपड़ी में आ गया।

इस भयावह दृश्य को देखकर लगभग तीन दिनों तक मैं बुखार की हालत में पड़ा रहा, पर इसके कारण आगे चलकर मुझे अधिक लाभ हुआ और मेरा भय हमेशा-हमेशा के लिए जाता रहा। बाद में तो श्मशान साधना भी उस औघड़ ने मुझे सिखा दी।''

डॉ0 श्रीमाली इस औघड़ के बाद जिन तांत्रिकों के साथ रह कर उनसे जो कुछ साधनायें समझीं, उनमें से कुछ निम्न प्रकार से हैं –

पगला बाबा

देहरादून से आगे शिमला से लगभग दस किलोमीटर दूर लाल टीबे के पास इस तांत्रिक से भेंट हुई थी, जिसे 'बला महाबला' विद्या का ज्ञान था। यह विद्या तांत्रिक क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है, इसके प्रयोग से पचास मन के वजन का पत्थर भी फूल के समान उठाया जा सकता है, उंगली के संकेत से पेड़ जड़ से उखड़ कर गिर जाते हैं; कहते हैं राम भक्त हनुमान संजीवनी हेतु जो द्रोणाचल पर्वत को उठाकर ले आये थे, वह इसी साधना

के बल से सम्भव हुआ था। पगला बाबा के पास डॉ0 श्रीमाली लगभग महीने भर तक रहे, उनसे कई अन्य साधनाओं के साथ-साथ 'बला-महाबला' साधना भी पूर्ण रूप से समझी।

गोरख गोखरू

तंत्र साधना के क्षेत्र में इनको असीम सिद्धियां प्राप्त थीं। इनसे डॉ0 श्रीमाली ने कई साधनायें समझीं, खास तौर से अदृश्य होना, दूर की वस्तु को आसानी से देख लेना, सैकड़ों मील दूर पड़ी वस्तु को मंगा लेना आदि।

धूर्जटा

ये भी पहुंचे हुए तांत्रिक हैं तथा तंत्र क्षेत्र में निष्णात हैं। इनसे भूगर्भ निधि ज्ञान तंत्र, कज्जल तंत्र, नख दर्पण तंत्र, दीप तंत्र आदि विद्यायें समझी थीं।

त्रिजटा

इसके अलावा भी छोटे-मोटे कई तांत्रिकों से डॉ0 श्रीमाली का संपर्क हुआ था और उन सभी से थोड़ा बहुत सीखने को ही मिला था, पर इन सब में जो सबसे विलक्षण तेजस्वी और सर्वश्रेष्ठ तांत्रिक हैं, उनका नाम 'त्रिजटा अघोरी' है, जिनको डॉ0 श्रीमाली आज भी तंत्र के क्षेत्र में गुरुवत् मानते हैं और जिनका नाम श्रद्धा से स्मरण करते हैं।

डॉ0 श्रीमाली ने अपने संस्मरणों में त्रिजटा अघोरी के बारे में लिखा है, मैं उन्हीं के शब्दों में संक्षिप्त परिचय दे रहा हूं –

''उन दिनों मैं साधना पथ का दीवाना था, मंत्र-तंत्र से सम्पन्न जो भी मिल जाता, उसी से सीखने-समझने बैठ जाता। कई बार ऐसा भी हुआ, कि किसी साधक की महीने-दो महीने सेवा की और कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा, बाद में ज्ञात हुआ, कि उसमें केवल ऊपरी चमक-दमक ही थी, ठोस

ज्ञान कुछ भी नहीं था। कई बार साधारण साधु से भी बहुत ऊंचे स्तर का मंत्र या साधना मिल जाती।

मेरा कोई निश्चित ठौर-ठिकाना नहीं था। जहां भूख लगती, सुपात्र और किसी ब्राह्मण का घर देख उसके घर से कच्चा सामान मांग भोजन पका कर खा लेता; चलते-चलते जहां थक जाता, वहीं पास के गांव में किसी गृहस्थ के घर जाकर सो जाता; न तो मेरे पास कोई सामान था, जो चोरी चला जाता और न मुझे इसका डर ही था। इन दिनों मैं हिमालय के दुर्गम पहाड़ी प्रदेशों में घूम रहा था।

उन दिनों मैं बीमार था, पानी माफिक न होने के कारण पेचिश की शिकायत हो गई थी और काफी कमजोर सा हो गया था। अतः गांव के एक वैद्य का इलाज चल रहा था और उससे काफी कुछ ठीक अनुभव कर रहा था।

मुझे प्रातः भ्रमण का प्रारम्भ से ही शौक रहा है, अतः उस दिन भी प्रातः तारों की छांव में ही मैं प्रकृति के मुक्त वातावरण में उत्तर की तरफ घूमने निकल पड़ा था। ऊषा का प्रकाश धरती पर बिखरने लग गया था, मैं गांव के उत्तर की तरफ घूमने निकल पड़ा था। मुझे गांव वालों ने उस पहाड़ी की तरफ जाने से मना कर दिया था और वैद्यराज ने तो यहां तक बताया था, कि पहाड़ी पर एक नरभक्षी रहता है, अतः उस पहाड़ी की तरफ जो भी गया, आज तक जीवित नहीं लौट पाया।

मुझ में साहस था और मैं मुख स्तम्भन, शरीर स्तम्भन आदि साधनायें भली प्रकार से सीख गया था, जिसकी वजह से साहस बढ़ गया था, इसीलिए उस पहाड़ी पर जाने और उस नरभक्षी को देखने की इच्छा बराबर बलवती हो रही थी। उस दिन प्रातःकाल पैर अपने आप उस पहाड़ी की तरफ बढ़ गये।

वह पहाड़ी अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ थी और उसकी सीधी चढ़ाई थी। वास्तव में ही इतनी सीधी चढ़ाई मैंने कहीं नहीं देखी थी, फिर भी मैं सांस खा-खाकर पहाड़ी पर चढ़ रहा था। दुर्गम चढ़ाई होने के कारण हांफ भी

रहा था, साथ ही कमजोर होने की वजह से चक्कर भी आ रहे थे, पर मेरी उत्सुकता बराबर मुझे ऊपर जाने के लिए ठेल रही थी।

ऊपर पहुंचा, तो पूरी तरह पस्त हो चुका था। बीच में एक बार तो चक्कर आने की वजह से लुढ़क गया था और करीब पन्द्रह फीट नीचे एक पत्थर से जा टकराया था। मुझे वैद्यराज जी ने ज्यादा चलने से मना किया था, पर मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर बैठा था। ऊपर पहुंचते ही मन्दिर के पास जोरों का चक्कर आया और मैं धड़ाम से गिर पड़ा।

ज्ञात नहीं, मैं कितनी देर तक बेहोश रहा, पर कुछ समय बाद जब मेरी आंख खुली, तो सामने खड़े व्यक्ति को देखकर ही मेरे मुंह से जोरों से चीख निकल पड़ी – वह मेरे सामने खड़ा व्यक्ति था 'त्रिजटा अघोरी'।

भयंकर गैंडे के समान मोटी चमड़ी, उस पर लम्बी रोमावली और आबूनसी शरीर, लम्बा-चौड़ा डील-डौल, उसकी एक जांघ भी मेरे दोनों बाहों के घेरे में आ जाय, तो आश्चर्य ही था, सिर पर लम्बे बाल जो कि कमर तक लटके हुए थे और उन बालों को तीन भागों में बांटकर स्त्रियों की तरह चोटियां की हुई थी, ललाट पर सिन्दूर का लाल तिलक, भयानक मोटी-मोटी लाल सुर्ख आंखें, छोटे-छोटे पर फौलादी हाथ, पूरे शरीर पर मात्र कमर से बंधा हुआ काले मृग का चर्म, मोटे पैर और डरावना भयानक व्यक्तित्व . . . यह था त्रिजटा अघोरी . . .

एक क्षण में ही मुझे अपनी स्थिति का भान हो गया, मन में पछतावा भी, कि मैं नाहक इधर आ गया, गांव वालों ने वास्तव में ही इधर आने के लिए जो मना किया था, वह ठीक था, निश्चय ही यह नरभक्षी है .... और आज इस त्रिजटा का भक्ष्य मेरा शरीर ही है, इसमें कोई दो राय नहीं ...

पर दूसरे ही क्षण मैंने अपने आपको संयमित किया और हृदय में साहस का संचार किया, जो भी होगा देखा जायेगा। यदि इसका भक्ष्य ही बनना है, तो इतनी आसानी से नहीं बनूंगा, चाहे सामने तूफान है पर अंतिम

क्षण तक टकराऊंगा। मैं उठा . . . सामने भैरव की विकराल मूर्ति थी, जिसके आगे कुछ समय पहले कटा हुआ बकरा पड़ा था और उसका रक्त बहकर मंदिर के प्रांगण से नीचे उतर आया था। मैंने अपना ध्यान त्रिजटा अघोरी की तरफ से पूरी तरह हटा लिया और पूरी तरह से अपना ध्यान भैरव मूर्ति पर केन्द्रित कर मंदिर के प्रांगण में ही पालथी मारकर बैठ गया . . . होंठ बुदबुदाने लगे—

संसृति कूप मनल्पमधोनि निदान निदानमजस्त्रमशेषं।
प्राप्य सुदुःख सहस्त्र भुजंग विषेक समाकुल सर्वतनैमं।।

घोर महा कृपणापदमेव गंतस्य हरे पतितस्य भवाब्धौ।
त्वां भजतो मम देहि दयाधन हे मद्भैरु! पदाम्बुजदास्यम्।।

संसृति सिन्धु विशाल कराल महाबल काल खग्रास ऽ नार्तम्।
व्यग्र समग्र धियं कृपणं च महामद नक्र सुचक्र हतासुम्।।

काल महारसनोर्भिनिपीड़ित मुद्धर दीनमनन्य गति मां।
त्वां भजतो मम देहि दयाधन हे मद्भैरु! पदाम्बुजदास्यम्।।

संसृति पन्नगवक्त्र भयंकर छंट महाविष दग्ध शरीरं।
प्राण विनिर्गम भीति समाकुल मंदमनाथ मतीव विषाणाम्।।

मोह महा कुहरे पतितं दययोद्धर माम जितेन्द्रिय कामं।
त्वां भजतो मम देहि दयाधन हे मद्भैरु! पदाम्बुजदास्यम्।।

— मेरी आंखें बंद थीं और मुंह से भैरव स्तुति अजस्र रूप से चल रही थी, जब स्तुति बंद हुई, मैंने आंखें खोलकर नजरें ऊपर उठाईं तो सामने ही विकराल त्रिजटा फुफकारता हुआ खड़ा था, क्रोध में उसकी आंखें अंगारवत् दहक रही थीं, सारा शरीर क्रोध में थर्रा रहा था। स्तुति बंद होते ही वह दहाड़ पड़ा ......

— तेरी यह हिम्मत . . . असभ्य . . . दुष्ट . . . नारकी कीड़े . . . मलेच्छ, इस गन्दे और अपवित्र वस्त्रों में और चोले में भैरव स्तुति . . . भैरव भक्ष्य!!

उसकी दहाड़ से पेड़ों पर बैठे पक्षी फड़फड़ा कर उड़ गये थे और उनकी चीखों से वातावरण अजीब प्रकार का हो गया था। मैं यथासम्भव शांत था और क्रोध को दबाकर रख रहा था। यह बात नहीं थी, कि मैं डर गया था, पहली बार डर अवश्य लगा था, पर बाद में तो भय जाता रहा था।

— 'क्या कर सकता है यह अघोरी . . . हो सकता है यह तांत्रिक हो, मारण, स्तम्भन प्रयोग जानता हो, पर निरा मिट्टी का लोंदा मैं भी नहीं हूं। अब तक के जीवन में काफी कुछ जान गया था, सीख चुका था और प्रयोग करके प्रामाणिक भी हो गया था। यदि इसके पास मारक स्तम्भन प्रयोग होगा, तो प्रयोग करने दो; तुर्की-ब-तुर्की जवाब दूंगा, इसने गांव वालों को ही भक्ष्य किया होगा, कोई मिला नहीं है इसको, मेरा भक्ष्य करने से पहले सोचना पड़ेगा इसे।'

मैं उठ खड़ा हुआ, उसके मुंह से अजस्र धाराप्रवाह गालियां निकल रही थीं। वह मुझे उकसाना चाहता था और मैं अपने आपको शांत बनाये रखने का प्रयत्न कर रहा था, मैं समझ गया था, कि वह मुझे उत्तेजित करना चाहता था। तांत्रिक सफलता हेतु प्रतिपक्षी का क्रोधित होना, उसमें चोट करने की भावना होना जरूरी है, अक्रोध पर तंत्र सफल नहीं हो पाता। यदि कभी किसी दुष्ट तांत्रिक से पाला पड़ जाय और ज्ञान न हो, तो उस समय सबसे बड़ी सुरक्षा साधना 'अक्रोध' ही होता है, क्रोध रहित व्यक्ति पर तंत्र प्रयोग नहीं के बराबर सफल होते हैं।

मैं इससे पूर्व तांत्रिक रहस्यों को जान चुका था, इसकी मूल भावना को, श्मशान साधना और प्रेत साधना जैसी कठोर क्रियाओं को भी सफलता पूर्वक सम्पन्न कर चुका था, अतः डर तो नहीं लग रहा था, पर मैं व्यर्थ में तांत्रिक अवलम्बन लेना नहीं चाहता था। इन दिनों मैं मंत्र साधना क्षेत्र में

साधना कर रहा था, अतः इस साधना के बीच में तांत्रिक अवलम्बन लेने से मंत्र साधना का जो प्रयोग कर रहा था, वह व्यर्थ हो जाता और वापिस नये सिरे से कार्य प्रारम्भ करना पड़ता . . . इसलिए मैं लगभग शांत सा था . . . और वह इसे मेरा समर्पण समझ रहा था।

पर वह चकित था, आज तक ऐसी स्थिति में भक्ष्य उसके सामने रोया है, गिड़गिड़ाया है, भागने का असफल प्रयास किया है ... पर इस बार भक्ष्य अर्थात् मैं सामने खड़ा था, आंखों में आंखें डालकर . . . दृढ़ता से!

अजीब स्थिति थी, मैं लगभग शांत था और वह क्रोध में जल रहा था, उसके होंठ बड़बड़ा रहे थे, गालियां दे रहे थे . . . पर कुछ ही मिनटों बाद उसके होंठों से गालियां निकलनी बंद हो गई और 'स्तंभन प्रयोग' चालू हो गया। यह प्रयोग मैं काफी पहले सीख चुका था, इस प्रयोग से सामने वाले व्यक्ति को अपाहिज सा गुलाम बना दिया जाता है, न तो उसमें कुछ सोचने-समझने की शक्ति रहती है और न कुछ करने की भावना ही, बस एक गुलाम सा बन जाता है। मैं समझ गया, कि यह मुझे जड़वत् बनाने के लिए है, उसका प्रयोग चालू था—

क्रां क्रीं क्रों कालिका काल्ये सं सं सं सर्वहारिणी
पां पीं पों पूतले पुण्ये बं बं बं बन्ध वारिणी
त्रं त्रं त्रं त्रास्यं त्रास्यं भ्रं भ्रं भ्रं भ्रम्भ भोगिणी
हुं हुं हुं . . .

मैं कुछ क्षणों तक उसकी बेहूदा, नीच एवं गिरी हुई हरकतों को देखता रहा, फिर इसका विरोध करने का निश्चय किया; इसके लिए 'शत्रुमुख स्तंभन प्रयोग' प्रारम्भ किया।

शत्रुमुख स्तंभन प्रयोग तांत्रिक क्षेत्र में अद्‌भुत कहा जाता है, मैं इसे औघड़ बाबा से सीख चुका था और प्रयोग में भी एक बार ला चुका था। इसके प्रयोग से सामने वाले का मुंह खुला का खुला रहा जाता है, न

तो वह मंत्र जप कर सकता है और न खा-पी ही सकता है, मुंह पूरा का पूरा खुला रहने से दर्द करने लग जाता है और मुंह से केवल घों-घों की ध्वनि ही निकल सकती है।

मेरे इस प्रयोग से त्रिजटा अघोरी चकरा गया, आश्चर्य के चिन्ह चेहरे पर स्पष्ट रूप से अंकित हो गये थे, उसे स्वप्न में भी भान नहीं था, कि यह पिद्दी सा छोकरा इतना ऊंचा प्रयोग भी कर सकता है। आश्चर्य के साथ ही उसके चेहरे पर चिंता की लकीरें भी खिंच गई .... पर था वह शक्तिवान, उसने तुरंत 'स्तंभन प्रयोग' बंद कर मेरे द्वारा किये जा रहे 'शत्रुमुख स्तंभन' को निष्फल करने के लिए 'मानस प्रयोग' प्रारम्भ कर दिया और उसने मेरे द्वारा किये गये प्रयोग को निष्फल कर अपने मुंह को सामान्य बना लिया। यह था मेरा और अघोरी का प्रारम्भिक परिचय . . . अपनी-अपनी विद्या का प्रमाणीकरण . . .

एकाएक उसके चेहरे पर चमक आ गई, प्रसन्नता के अतिरेक में उसने मुझे कमर से पकड़कर ऊपर उठा लिया और खिलौने की तरह उठाकर तीन-चार गोल चक्कर काटकर पृथ्वी पर खड़ा कर दिया।

इसके बाद तो मेरी आत्मीयता, मित्रता और घनिष्ठता हो गई उससे। मैं इसके बाद लगभग तीन महीने तक उस भैरव मंदिर में ही उसके साथ रहा, सही शब्दों में कहा जाय, तो वह मेरा पथ-प्रदर्शक बना, तांत्रिक क्षेत्र में वह मेरा गुरु बना और अग्रज की तरह उसने मेरा रास्ता स्पष्ट किया।

तांत्रिक दृष्टि से आज भी मैं उसे अपना गुरु मानता हूं, उसने इस क्षेत्र में जो कुछ दिया है, उसके सामने त्रैलोक्य की सारी संपदा भी तुच्छ है। निस्सन्देह त्रिजटा इस युग का अपार शक्ति सम्पन्न एवं तांत्रिक सम्राट है।

मैं जीवन में हजारों-लाखों लोगों से मिला हूं, पर त्रिजटा का व्यक्तित्व अपने आप में विलक्षण ही है, एक तरफ जहां वह क्रोध का साक्षात रुद्र था, वहीं दूसरी ओर उसके हृदय में करुणा का अथाह सागर लहरा रहा था।"

डॉ0 श्रीमाली से मैंने जब त्रिजटा अघोरी के बारे में चर्चा की, तो उसे स्मरण कर उनकी आंखें भीग आईं उन्होंने बताया – 'मैं त्रिजटा अघोरी के साथ लगभग तीन महीने रहा, इन तीन महीनों में उसने उच्चकोटि का तांत्रिक ज्ञान कराया; न तो त्रिजटा ने सिखाने में कुछ कसर की और न मैंने सीखने में शिथिलता बरती। प्रथम पच्चीस दिनों तक तो मैंने नींद तक नहीं ली, त्रिजटा ने 'निद्रा स्तंभन' के द्वारा नींद पहले ही उड़ा दी थी, निद्रा स्तंभन करने पर न तो नींद आती है, न आलस्य और न तो शिथिलता ही।'

इन तीन महीनों में त्रिजटा ने डॉ0 श्रीमाली को कई तांत्रिक क्रियायें सिखाईं, समझाईं और अपने सामने प्रयोग कराकर सिद्ध कराया।

वशीकरण तंत्र

मोह तंत्र

आकर्षण तंत्र

उच्चाटन तंत्र

कालिका चेटक

फेत्कारिणी चेटक

भैरव चेटक

आपत्ति उद्धारक बटुक भैरव तंत्र

शत्रु स्तम्भन

गति स्तम्भन

क्षुधा स्तम्भन

दशवाराही वशीकरण प्रयोग

वार्ताली स्तम्भन

इच्छा प्राप्ति प्रयोग

विद्वेषण प्रयोग

आकर्षण प्रयोग

शांतिकरण प्रयोग

यक्ष चेटक

उच्छिष्ट चांडालिनी चेटक

करालिनी चेटक

कर्णावर्त श्मशान यक्षिणी चेटक

काम्य चेटक

निद्रा स्तम्भन

बलाबल प्रयोग आदि।

इसके कुछ दिनों बाद किसी बंगाली पत्रिका में डॉ० श्रीमाली के कुछ संस्मरण प्रकाशित हुए थे, उनमें से त्रिजटा अघोरी से सम्बन्धित दो संस्मरण नीचे दे रहा हूं –

✳ ✳ ✳

''उस दिन मैं पहाड़ी की दक्षिणी ढलान की ओर घूमने निकल गया था। घर से निकले हुए काफी दिन हो गये थे और उस दिन अकस्मात् ही घर की याद आ गई थी। उस चट्टान पर काफी ऊपर चढ़ आया था, अतः उठकर भैरव मंदिर की ओर बढ़ा, आज त्रिजटा से 'काम्य चेटक प्रयोग' समझना था। मैं भैरव मंदिर के पास आया, तो वहां का दृश्य देखकर दहल गया, त्रिजटा कहीं से मोटा कद्दावर बकरा उठाकर ले आया था और उसे दोनों हाथों से उठाकर भैरव प्रसाद हेतु जमीन पर दे मारा, जिससे कि उसका सिर फट गया था और गिरते ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

त्रिजटा ने मुझे देखा और ही-ही करके हंसने लगा, उसके पीले-पीले दांत अत्यंत कुरूप लग रहे थे . . . – 'भैरव प्रसाद है, तू

तो ब्राह्मण कुमार है, चखेगा तो नहीं न!'

मुझसे यह वीभत्स दृश्य देखा नहीं गया, मैंने कहा – 'त्रिजटा! मैं आज ही यहां से चला जाऊंगा . . . इतना विभत्स . . . इतनी जुगुप्सा . . . उफ्!' और मेरी आंखें जहां एक ओर घृणा से सिकुड़ आईं, वहीं दूसरी ओर उसकी अकाल मृत्यु पर छलक आईं।

त्रिजटा बकरे को घसीटते हुए मेरे पास आया, यद्यपि उसका सिर फट गया था, पर खून नहीं निकल रहा था, 'वराही प्रयोग' से रक्त स्राव पूर्णतः बंद कर रखा था, बोला – 'अच्छा नहीं लग रहा है रे . . . तुझे अच्छा नहीं लगता, तो मैं नहीं करूंगा, पर तू मत जा रे . . . !'

अभी तक जो मेरी आंखें छलछला रही थीं, बरसने लगीं। मैं उठा और कोठरी में जाकर अपनी थैली उठा लाया, थैली में धोती और कुरता था, इसके अलावा मेरे पास और था भी क्या?

– 'क्या तू सचमुच जा रहा है रे!'

– 'हां त्रिजटा! इस प्रकार के वातावरण में तो मैं एक मिनट भी सांस नहीं ले पाऊंगा . . . इस अज ने तेरा क्या बिगाड़ा था . . . और इसे क्यों मारा? क्या इसे मारना जरूरी था . . . और फिर इस तरह से मारना . . .!'

– 'तो इसे वापिस जीवित कर दूं?'

यह मेरे लिए सर्वथा अप्रत्याशित बात थी – क्या इस बकरे को पुनर्जीवित भी किया जा सकता है? – क्या इसका फटा सिर इतनी जल्दी जुड़ जायेगा? – शायद हो भी सकता है! . . . त्रिजटा के साथ असम्भव जैसा शब्द लगाना विचारणीय ही है!

– 'क्या यह जीवित हो सकता है?'

– 'क्यों नहीं हो सकता, काल भैरव के लिए असम्भव क्या है?'

– 'तो त्रिजटा! मैं यही देखना चाहता हूं। अगर तूने ऐसा कर दिया, तो यह मेरे लिए आठवां आश्चर्य ही होगा।'

त्रिजटा हो-हो करके हंस पड़ा, बोला – 'तूने शेर और बिल्ली की कहानी सुनी है?'

मैंने कहा – 'शेर व बिल्ली की कहानी?'

– 'हां! शेर-बिल्ली की कहानी। बिल्ली को शेर की मौसी और गुरु कहा जाता है, शेर के आग्रह पर बिल्ली ने उसे सारी विद्यायें सिखा दीं और पारंगत कर दिया। एक दिन शेर ने सोचा, बिल्ली मौसी ने शिकार की सारी क्रियायें तो सिखा ही दी हैं और फिर मैं इससे बलिष्ठ तो हूं ही, क्यों न आज इस बिल्ली पर ही झपट्टा मारा जाय और शिकार का आहार बनाया जाय।'

ऐसा सोच कर शेर ने ज्योंही बिल्ली पर झपट्टा मारा, कि बिल्ली उचक कर पेड़ पर चढ़ गई, शेर विवश सा ताकता रह गया।

शेर ने पूछा – 'मौसी! यह तो तूने सिखाया ही नहीं, पेड़ पर चढ़ने की विद्या मुझे कब सिखाई?'

बिल्ली मुस्कुराई, बोली – 'अगर सिखा देती, तो आज फिर तेरे पंजे से कैसे बचती' . . . और कह कर त्रिजटा हो-हो करके बेसाखा हंस पड़ा।

मैं भी हंस पड़ा, बोला – 'मौसी! तभी तूने मुझसे इसकी चर्चा नहीं की।'

– 'अरे नहीं रे! मैं तो हंसी कर रहा था। यह 'संजीवनी तंत्र' कहलाता है, जो कि 'काम्य प्रयोग' के बाद ही सीखा जा सकता है; काम्य प्रयोग तू ने अभी-अभी समझा ही है, अत: यह तंत्र तो अब सिखाने वाला था, पर तू तो जाने की तैयारी कर रहा है।'

मैंने मन में सोचा, त्रिजटा कितना चतुर है, मुझे रोकने के लिए कैसी चाल चली है, पर कितना सरल और निष्कपट है यह। मैंने तुरन्त एक ओर थैली फेंकी और जाकर उससे लिपट गया . . . मैंने देखा उसकी आंखों से प्रेम के आंसू छलछला पड़े थे।

त्रिजटा कोठरी में गया और जमीन को थोड़ा सा खोदकर एक हंडिया उठा लाया, जिसमें गाढ़-गाढ़ा सा कुछ लेप था, उसने अंगुली से वह लेप बकरे के फटे सिर के अंदर भर दिया और फटे सिर को हथेली से दबाकर जोड़ दिया।

शायद उसने चार या पांच मिनट इस प्रकार से सिर को दबाये रखा और आश्चर्य की बात यह थी, कि वह फटा सिर इस प्रकार से जुड़ गया था, कि जैसे कभी फटा ही न हो। आग्रह करने पर उसने उस लेप को तैयार करने की विधि भी बता दी। सामान्य जीवन में किसी तेज धार से लम्बा सा घाव बन जाये और उसमें यह तैयार लेप भर दें, तो घाव इस प्रकार से मिल जाता है, कि बाद में ज्ञात ही नहीं होता, कि यहां पर घाव भी था।

इससे भी आश्चर्य की बात यह थी, कि मेरे सामने ही बकरे को लिटाकर 'संजीवनी तंत्र' कर दिया, उसका प्रयोग लगभग आधे घंटे तक चला, पहले बकरे में हल्का सा स्पंदन हुआ, फिर थोड़ा हिला-डुला और अगले दस मिनटों में तो वह झुरझुरी लेकर उठ खड़ा हुआ।

आज का सामान्य व्यक्ति इस प्रकार के तंत्रों पर विश्वास न करे, पर जो घटना मेरी आंखों के सामने घटित हो चुकी है, उसे मैं कैसे झुठला सकता हूं। बाद के दिनों में उसने यह तंत्र भी बिना हिचकिचाहट के सिखला दिया, सिखला जरूर दिया, पर इसे सिद्ध करना अत्यन्त दुष्कर और कठिन कार्य है। अस्तु।"

✻ ✻ ✻

इसी बंगाली पत्रिका में त्रिजटा से सम्बन्धित एक और संस्मरण प्रकाशित है, जिससे उसकी मानवीयता पर प्रकाश पड़ता है–

"आखिर वह दिन भी आ गया, जब मुझे वहां से विदा होना था, मुझे जितना स्नेह और आत्मीयता इस त्रिजटा से मिली थी, उतनी किसी से नहीं। लोगों के सामने उसका रूप विकराल, भयावना और डरावना था, जबकि

मेरे सामने उसका व्यवहार बच्चे की तरह था। तंत्र का इतना प्रचण्ड विद्वान होते हुए भी शिशुवत था, बच्चे की तरह वह मचल पड़ता और मनाने पर बच्चे की तरह किलक पड़ता।

यद्यपि उस पहाड़ी से, उस भैरव मंदिर से, उस त्रिजटा से बिछुड़ने को जी नहीं चाह रहा था, पर यह मेरा लक्ष्य नहीं था, यह तो मंजिल के मार्ग में आने वाला एक पड़ाव मात्र था। तंत्र मेरे जीवन का लक्ष्य नहीं था, मैंने तंत्र का उच्चतर ज्ञान जरूर अर्जित किया, पर यह दृढ़ निश्चय कर लिया, कि इसका प्रयोग नहीं के बराबर करूंगा, एक प्रकार से करूंगा ही नहीं, मेरी आस्था मंत्र साधना में थी और वही मेरे जीवन का ध्येय था।

जिस दिन त्रिजटा ने कहा – 'नारायण! अब मैं सुख से मर सकूंगा, कि मुझे कोई तो पात्र मिला, जिसमें इस प्रकार की कठोर विद्याएं सीखने की हिम्मत थी और मुझे कितनी खुशी है, कि तुम कसौटी पर खरे उतरे। कितनी कठिनाई झेली है इन तीन महीनों में, पर तुमने मुझे संतोष दिया। ... और उसने मुझे अपने बचपन से लेकर उस दिन तक का पूरा इतिहास सुना दिया। उसकी कहानी सुनकर तो उस पर हजार गुना श्रद्धा और लाख गुना प्रेम बढ़ गया।

आखिर वह दिन आ गया जिस दिन मुझे त्रिजटा से विदा लेनी थी। अनमने मन से वह मेरे साथ पहाड़ी से नीचे उतर कर साथ-साथ चलता रहा, लगभग दो-तीन मील चलने पर जब मैंने उसे वापिस जाने का आग्रह और हठ किया, तो वह फफक पड़ा, उसकी आंखें बरसने लगीं, चेहरा आंसुओं से भर आया और गला रुंध गया . . . मेरे हाथों में 'रतिराज गुटिका' ठूंसते हुए बोला – 'नारायण! तू ने मुझे क्या नहीं दिया . . . मैं तो पत्थर था रे . . . तूने मुझे याद दिला दिया, कि मैं भी इन्सान हूं, तू मेरा भाई है, दोस्त है, सलाहकार है और बाप है . . . तुझ से बिछड़ कर मैं शायद अब ज्यादा जिन्दा नहीं रह सकूंगा' . . . और मुझसे चिपक कर वह फफक पड़ा।

उफ्! विदाई की बेला भी कितनी दुःखद होती है और कर्तव्य भी

कितना क्रूर और कठोर . . . वह एकदम से पलटकर पहाड़ी की ओर बढ़ गया।

इसके बाद से आज तक कई बार 'काम्य प्रयोग' से मिलना भी हुआ है . . . सशरीर तो नहीं वायवीय ही . . . और रतिराज गुटिका . . . वह उसके जीवन की धरोहर थी, जिसे उसने अपने तांत्रिक गुरु से प्राप्त किया था, इसका महत्त्व तो तंत्र विद्या जानने वाला ही समझ सकता है।

इस रतिराज गुटिका के सामने सारी त्रैलोक्य की सम्पदा भी तुच्छ है... व्यर्थ है . . . इसके माध्यम से क्या कुछ नहीं किया जा सकता ... क्या कुछ नहीं हो सकता?"
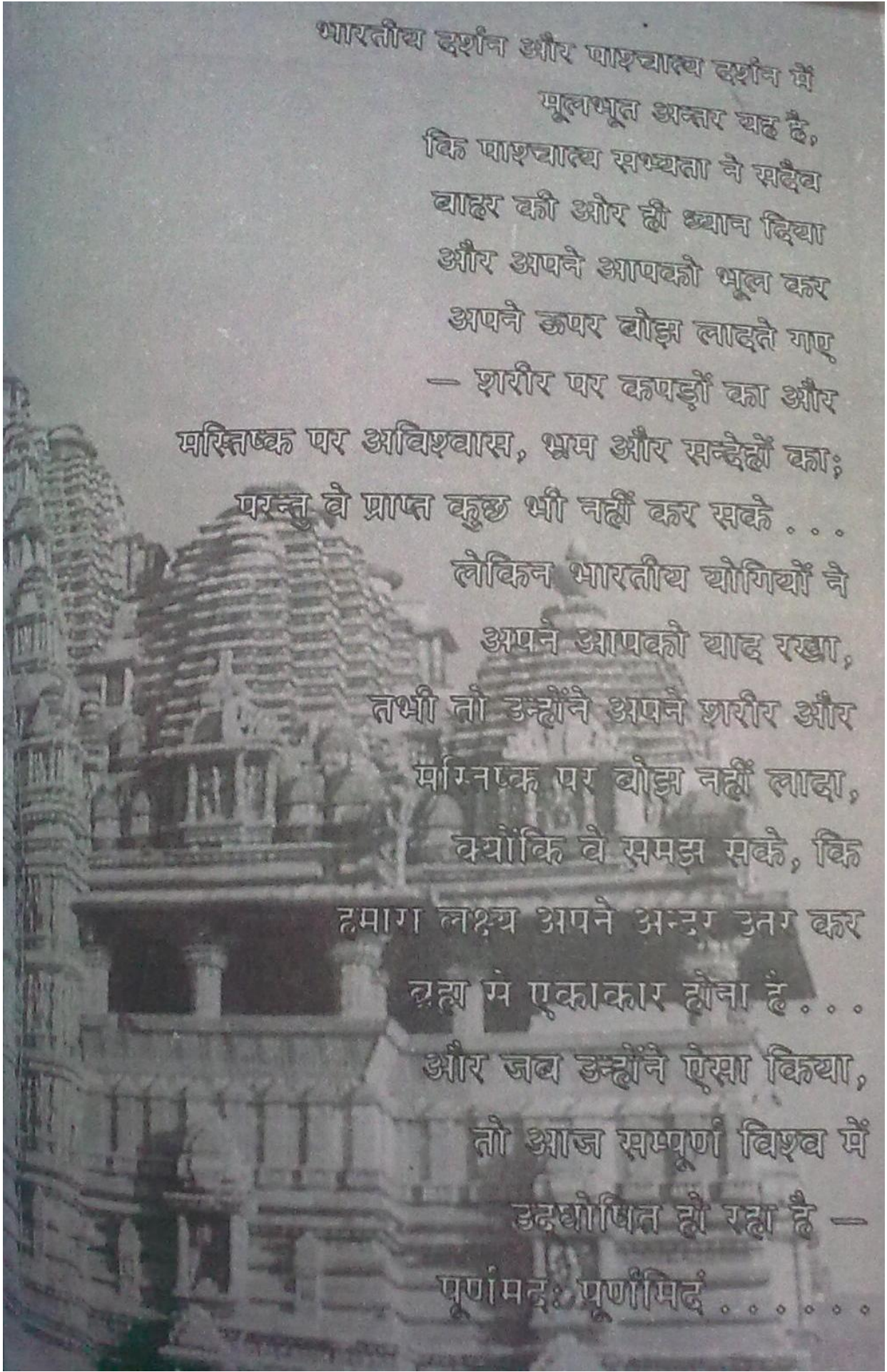
एक दिन अवसर देखकर मैंने बैठक में डॉ0 श्रीमाली से पूछा – गुरुजी! क्या त्रिजटा अभी भी जीवित हैं?

डॉ0 श्रीमाली ने मेरी आंखों में झांका और मुस्कुराये, बोले – 'हां पोलर! जीवित है, पिछले साल ही एक बार फिर उसी पहाड़ी पर गया था, उससे मिला थां' . . . और डॉ0 श्रीमाली उसकी याद में खो से गये।

कितना महान है भारत! कितनी सिद्धियां और साधक इस देश में हैं! . . . काश! मेरा जन्म भारत में होता, काश! मैं यह सब सीख पाता।
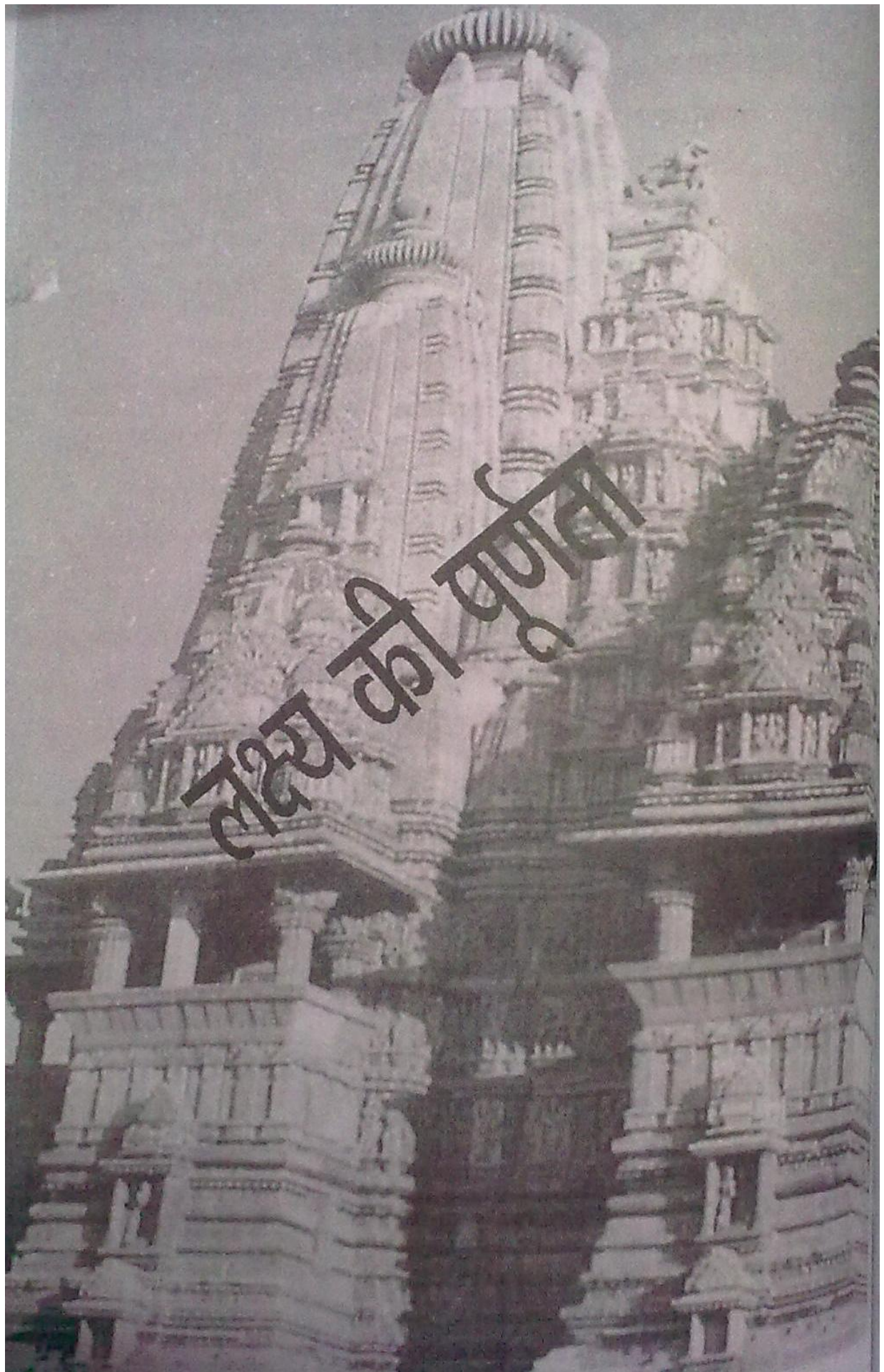
भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन में
मूलभूत अन्तर यह है,
कि पाश्चात्य सभ्यता ने सदैव
बाहर की ओर ही ध्यान दिया
और अपने आपको भूल कर
अपने ऊपर बोझ लादते गए
— शरीर पर कपड़ों का और
मस्तिष्क पर अविश्वास, भ्रम और सन्देहों का;
परन्तु वे प्राप्त कुछ भी नहीं कर सके . . .
लेकिन भारतीय योगियों ने
अपने आपको याद रखा,
तभी तो उन्होंने अपने शरीर और
मस्तिष्क पर बोझ नहीं लादा,
क्योंकि वे समझ सके, कि
हमारा लक्ष्य अपने अन्दर उतर कर
ब्रह्म से एकाकार होना है . . .
और जब उन्होंने ऐसा किया,
तो आज सम्पूर्ण विश्व में
उद्घोषित हो रहा है —
पूर्णमदः पूर्णमिदं . . . . . .
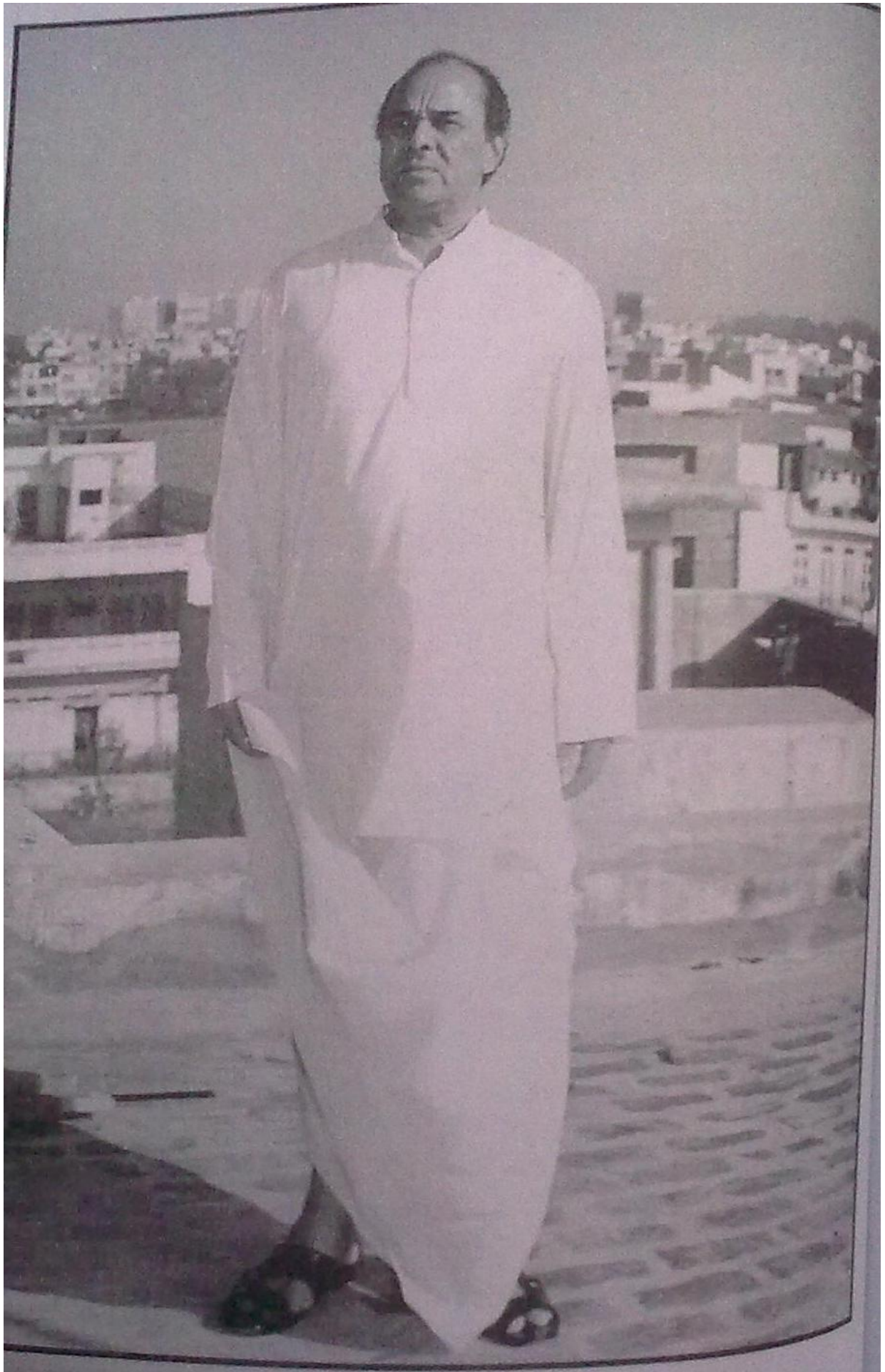
डॉ0 श्रीमाली का ध्येय ज्योतिष एवं फलित के क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करना था, साथ ही मंत्र शास्त्र में दक्षता हासिल करने के साथ-साथ उन लुप्त मंत्रों एवं विद्याओं को पुनर्जीवित करना था, जो कि एक प्रकार से लोप हो गई थीं, उनके जीवन का ध्येय यही था और आज भी यही है। डॉ0 श्रीमाली का सिद्धान्त है, कि विद्यायें खराब नहीं होतीं, उनका प्रयोग खराब हो सकता है। डॉ0 श्रीमाली त्रिजटा से भी मिले, उससे कुछ सीखा भी पर तंत्र उनकी रुचि के न तो अनुकूल रहा है और न ध्येय ही। अतः त्रिजटा से विदा लेने से पूर्व ही उसके सामने डॉ0 श्रीमाली ने प्रतिज्ञा कर ली थी, कि जीवन में कभी भूल से भी न तो तांत्रिक कार्य करूंगा और न जीवन में किसी भी कार्य में तंत्र का उपयोग करूंगा।

मैंने इस सम्बन्ध में डॉ0 श्रीमाली से प्रश्न किया, तो उन्होंने उत्तर दिया – 'हां! यह ठीक है, मैंने जीवन में तंत्र से सम्बन्धित किसी भी प्रकार का कार्य न करने की सौगन्ध ले रखी है, न तो उकसाने पर उत्तेजित होता हूं और न चमत्कार प्रदर्शन में विश्वास रखता हूं। सीधे-सादे सरल जीवन

को जीने का हामी हूं और ऐसा ही जीवन बिताने का इच्छुक हूं।'

वस्तुतः डॉ0 श्रीमाली की पूर्ण आस्था मंत्र शास्त्र एवं मंत्र साधना सिद्धि में ही है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे गृह त्याग कर वन्य जीवन बिताने पर आमादा हुए थे। त्रिजटा का सम्पर्क और भैरव मंदिर छोड़ते समय यही विचार उनके मानस को बार-बार उद्वेलित कर रहे थे, कि मेरे जीवन का ध्येय मंत्र साधना एवं आध्यात्मिक सिद्धि है तथा अपना पूरा समय इसी की खोज में बिता देना चाहिए।

भैरव मंदिर छोड़ने के बाद काफी समय तक डॉ0 श्रीमाली इधर-उधर भटकते रहे; कुछ योगियों के दर्शन भी हुए और उनसे कुछ सीखा भी, परन्तु उनके मानस को तृप्ति नहीं मिल रही थी। इस अवधि में जिन उच्च स्तरीय साधुओं या योगियों के सम्पर्क में डॉ0 श्रीमाली आये, उनमें से कुछ विवरण निम्न प्रकार से हैं –

हरिओम बाबा

त्रिजटा से बिछुड़ने के बाद हरिओम बाबा से परिचय हुआ था। मानसरोवर की बाबा ने कई बार यात्रायें की थीं, इसलिए इनको 'मानसरोवर बाबा' भी कहते हैं।

बाबा वस्तुतः अक्खड़ स्वाभाव के तथा फक्कड़ वृत्ति के थे, न तो अपने पास कुछ रखते थे और न किसी प्रकार की याचना करते थे; जो मिल जाता, खा लेते और जहां स्थान मिलता, नींद आने पर सो जाते। स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी थे, इसीलिए इनके पास कोई भी ज्यादा समय टिक कर नहीं रह पाता था; आज्ञा देने और आज्ञा पालन के बीच थोड़ा सा भी विलम्ब हो जाता, तो इनके लिए असहनीय स्थिति बन जाती थी और उस समय इनके हाथ में जो भी वस्तु होती, सामने वाले पर दे मारते, उस समय बाबा यह नहीं सोचते थे, कि हाथ में डंडा है या बर्तन है या कोई नोकदार वस्तु है। डॉ0 श्रीमाली के अनुसार – 'उनके सत्संग से कई छोटी-मोटी चोटों के निशान मेरे शरीर पर उनकी यादगार के रूप में सुरक्षित हैं।'

बाबा साधना पक्ष में निष्णात थे और इन्हें 'वायवी विद्या' ज्ञात थी। इसी वायवी विद्या द्वारा ये इच्छानुसार भ्रमण करने में समर्थ थे। शिव के ये परम भक्त थे और जीवन में दस हजार शिवलिंग स्थापित करने का संकल्प लिए हुए थे, सर्दियों में या गर्मियों में, जब भी धुन होती, गांवों की तरफ बढ़ जाते और चन्दा करके धन एकत्र करते तथा शिव मंदिर बनाकर शिवलिंग स्थापित कर पुनः पहाड़ों की तरफ बढ़ जाते। एक बार आग्रह करने पर बाबा ने 'सोऽहं सिद्धि' द्वारा साक्षात् शिव के दर्शन भी श्रीमाली जी को कराये थे, एक बार प्रसन्न होने पर बाबा ने डॉ0 श्रीमाली को 'सोऽहं सिद्धि' तथा 'वायवी विद्या' सिखा दी थी। वायवी विद्या के माध्यम से व्यक्ति क्षण मात्र में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है।

इन बाबा से तो आगे जाकर डॉ0 श्रीमाली का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध हो गया। बहुत बाद में जब डॉ0 श्रीमाली जोधपुर में बस गये, तब यही बाबा डॉ0 श्रीमाली के घर आये और लगभग एक सप्ताह तक साथ रहे। इन्हीं दिनों का एक स्मरण जो मैंने डॉ0 श्रीमाली के मुंह से सुना, उन्हीं के शब्दों में मैं नीचे स्पष्ट कर रहा हूं –

"सचमुच मेरे लिए प्रसन्नता का दिन है, कि हरिओम बाबा मेरे घर पर पधारे। जिस समय मैं संन्यासवत् जीवन व्यतीत कर रहा था, उन दिनों मैं लगभग दो महीनों तक बाबा के साथ रहा था और उन दो महीनों में जो स्नेह, वात्सल्य बाबा ने दिया था, वह जीवन में क्या भुलाया जा सकता है? आज भी 'वायवी विद्या' और 'सोऽहं सिद्धि' द्वारा जो लोकप्रियता देश और विदेश में मिली है, वह इन बाबा का ही तो प्रसाद है।

शास्त्रों में कथा है, कि यदि गंगोत्री का जल रामेश्वरम् मंदिर में भगवान शंकर पर चढ़ाया जाय, तो अतुलनीय पुण्य लाभ मिलता है, पिछले वर्ष जब मैं अपनी पत्नी और परिवार के साथ गंगोत्री गया, तो वहां से शुद्ध कलश में जल भरकर ले आया था, कि इसे भगवान शंकर पर रामेश्वरम् मंदिर जाकर चढ़ायेंगे।

इस वर्ष कुछ ऐसी स्थितियां बनीं, कि मैं अन्य कार्यों में जरूरत

से ज्यादा व्यस्त हो जाने की वजह से रामेश्वरम् न जा सका, अतः पत्नी और पुत्र को रामेश्वरम् भेज दिया, जिससे कि वे भगवान शंकर के दर्शन भी कर सकें और गंगोत्री-जल भगवान को अर्पण हो सके।

इन्हीं दिनों हरिओम बाबा मेरे घर पधारे, मैं अपने घर में विशेष साधना में रत था तथा नीचे वाले कमरे में ज्यादातर आसन पर एकाग्र बैठा रहता था। हरिओम बाबा का आसन भी सुविधा की दृष्टि से मेरे पास ही बिछा था। घर में मैं, पुत्री, छोटा पुत्र और पुत्र-वधू थी।

एक दिन मैं कमरे में अनुष्ठान के लिए बैठा ही था, मुश्किल से दो मिनट बीते होंगे, कि बाबा हड़बडा़ कर उठे (उन्हें यह ज्ञात था, कि मेरी पत्नी व पुत्र आदि रामेश्वरम् गये हुए हैं) और ऊपर जाकर पुत्री सरोज को आवाज दी। सरोज के आने पर पूछा – 'बिटिया! बहू (मेरी पत्नी) रामेश्वरम् गई है, क्या गंगोत्री का जल यहीं भूल गई है?'

सरोज ने पूजा कक्ष में जाकर देखा, तो गंगोत्री-जल-कलश भूल से यहीं छूट गया था; कलश पूजा स्थल में ही था, जहां रोज पड़ा रहता था।

बोले – 'ला मुझे दे, उधर बहू मंदिर में शंकर के सामने बैठी है और कलश भूल जाने के लिए पछता रही है, ला . . . मुझे दे तुरंत।'

सरोज ने वह कलश बाबा को थमा दिया, बाबा उसे लेकर घर के बाहर दौड़े और मेरे घर की दीवार की ओट जाते हुए सरोज ने देखा . . . लगभग सात-आठ मिनट बाद जब लौटे, तो खाली हाथ थे।

वे नीचे कमरे में आकर मेरे पास बिछे आसन पर बैठ गये, उनका सीना धौंकनी की तरह चल रहा था, पूरा शरीर पसीने में भीगा हुआ था; ऐसा लग रहा था, जैसे काफी दूर से चल कर या दौड़कर आये हों।

मैंने पूछा – 'क्या बात है बाबाजी! आप हांफ क्यों रहे हैं?'

बोले – 'तुम्हें क्या . . . तुम्हारे जैसे बच्चे मिलें, तो बूढ़ों को दौड़ लगानी ही पड़ेगी।'

– 'पर हुआ क्या?'

अभी भी उनका सांस उखड़ी हुई था और वे हांफ रहे थे।

बोले – 'बहू और बेटे को तो रामेश्वरम् भेज दिया और गंगोत्री का जल यहीं घर में भूल से रह गया। वहां बहू चिन्ता, ग्लानि और पश्चाताप कर रही थी, इसीलिए पहुंचा कर आ रहा हूं और क्या?'

शाम को सरोज ने भी बताया, कि बाबा जी गंगा-जल-कलश लेकर घर से बाहर गये थे और घर की दीवार की ओट तक तो मैंने जाते हुए देखा। जाते वक्त तो कलश साथ में लेकर गये थे, पर दस मिनट बाद जब लौटे, तो खाली हाथ थे।

मैं समझ गया, कि मैं अनुष्ठान में था, अतः अन्य क्रिया में मानसिक रूप से रत था, पर बाबा मानसिक स्वतंत्र थे, अतः पत्नी के पश्चाताप को 'आगम साधना' से समझ लिया होगा और 'वायवी विद्या' द्वारा सशरीर वहां जाकर पत्नी को कलश दे आये होंगे।

पांच-छः रोज के बाद जब पत्नी और पुत्र घर आये, तो पुत्र ने बाबा जी को देखते ही पहचान लिया – 'मां! यही वे बाबा जी है, जिन्होंने कलश लाकर दिया था।'

पत्नी ने पूरी घटना सुनाई, बोली – 'यहां से तो रवाना हो गई, पर घर के किसी भी सदस्य को गंगोत्री-जल-कलश साथ ले जाने का स्मरण नहीं रहा।'

जब रामेश्वरम् पहुंची तो ज्ञात हुआ, कि कलश तो घर ही भूल आई, पर अब क्या हो सकता है। मैं भारी और दुःखी मन से मंदिर में पहुंची, पर शंकर के सामने जाते ही रो पड़ी– कितनी इच्छा से आई थी, पर जिस इच्छा से मैंने यह यात्रा की, वह तो व्यर्थ ही रही, मैं पूजा कर रही थी, आपको स्मरण कर रही थी और जल न चढ़ा सकने की वजह से पश्चाताप कर रही थी.... कि अचानक मंदिर के द्वार से आवाज आई – 'बहू! बेटा!!' यह (जो साथ में पुत्र था, उसकी तरफ संकेत करके) द्वार तक

गया, तो एक बाबा खड़े थे, पसीने से लथपथ . . . हाथ में घर वाला ही गंगोत्री-जल-कलश था . . . बोले – 'मां को दे दो, शंकर पर चढ़ा दे, जोधपुर से नारायण ने भिजवाया है।'

'यह लड़का कलश लेकर मेरे पास आया, तो मैं हर्षातिरेक में आनन्द से उल्लसित हो गई। जब इसने बाबा जी के बारे में बताया, तो मैं दौड़कर दरवाजे तक आई, पर वहां कोई भी न था, शायद बाबा जी जा चुके थे . . . मैंने पूर्ण विधि-विधान से शिव-पूजन किया, दूसरे दिन पूरे रामेश्वरम् में घूमे और इस लड़के को कहा, कि कल वाले बाबा जी दिख जायें, तो बताना, पर वे दिखाई नहीं दिये। आज जब यह घर लौटा, तो इन बाबा जी पर नजर पड़ते ही इसने बताया, कि ये ही बाबा जी थे, जिन्होंने उस दिन मंदिर के दरवाजे पर यह कलश मुझे थमाया था और कहा था, कि नारायण ने भेजा है।'

बाबा जी सुनकर मुस्कुरा दिये।

मैंने बाबा जी का पूरा परिचय दिया और गत घटनाओं को स्मरण करते हुए उन्हें बताया, कि किस प्रकार संन्यासवत् जीवन में तथा मानसरोवर की यात्रा में बाबा जी का साहचर्य मिला था और बिना स्वार्थ और लाग-लपेट के 'वायवी विद्या' सिखाई थी।

पत्नी तथा पुत्र ने उठकर बाबा जी के चरण स्पर्श किये, तो आनंदातिरेक में बाबा की आंखें छलछला आई थीं। रुंधे गले से बोले थे – 'बहू! तू धन्य है, कि तुझे नारायण जैसा पति मिला' . . . और आगे के शब्द उनके गले में ही रुंध गये थे।'' वस्तुतः डॉ0 श्रीमाली आज भी जब इन बाबा का स्मरण करते हैं, तो विभोर से हो जाते हैं।

भुर्भुआ बाबा

भुर्भुआ बाबा भारत की विशिष्ट मूर्ति हैं, जो कि देश के श्रेष्ठ रसायनज्ञ और वीतरागी हैं। इनके बारे में डॉ0 श्रीमाली ने उन्हीं दिनों हिमालय क्षेत्र में विचरण करते हुए सुना था और तभी से डॉ0 श्रीमाली के मन में

इनसे भेंट करने का विचार था। डॉ0 श्रीमाली ने यह भी सुना था, कि बाबा को 'सिद्ध सूत' के बारे में प्रामाणिक ज्ञान है, जिसके फलस्वरूप वे लोहे को सोने में आसानी से परिवर्तित कर सकते हैं।

बाबा नेपाल में काठमांडू के पास वाग्मती नदी के उस पार जंगल में लगभग दो-तीन मील दूर रहते हैं और अधिकतर समय समाधि में ही रहते हैं। इन बाबा के बारे में डॉ0 श्रीमाली ने यह भी सुन रखा था, कि बाबा मन चाहे स्वरूप में अपने आपको परिवर्तित करने में सिद्धहस्त हैं, कभी बाबा शेर बन जाते हैं, तो कभी हिरण के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। उनके शेर स्वरूप को कई लोगों ने देखा है, अतः उस तरफ शिकारियों को जाने व शिकार करने की सख्त मनाही है, सम्भवतः भूल से ही बाबा को गोली लग जाये।

इनके सम्पर्क की कहानी भी मनोरम है। डॉ0 श्रीमाली ने अपने संस्मरणों में इनसे मिलने की घटना को भी स्थान दिया है। मैं डॉ0 श्रीमाली के शब्दों में ही इस घटना को उद्धृत कर रहा हूं —

वास्तव में ही काठमांडू भव्य और दर्शनीय स्थान है, तांत्रिक साधना का तो यह गढ़ है, यहां की 'दक्षिण काली' का मंदिर अपने आप में सिद्धिप्रद है तथा पशुपतिनाथ का मंदिर तो विश्वविख्यात है ही।

मेरे लिए सर्वाधिक आकर्षण था भुर्भुआ बाबा से मिलना, जिनके बारे में न मालूम कितना कुछ सुन रखा था। मेरे गुरु भाई ने बहुत अधिक आग्रह किया था, कि मैं जीवन में एक बार अवश्य बाबा से मिलूं और हो सके, तो 'सिद्ध सूत' का ज्ञान प्राप्त करूं। यद्यपि गुरु भाई ने बता दिया था, कि भुर्भुआ बाबा शायद ही सिद्ध सूत के बारे में बतायें, परन्तु फिर भी उसने आग्रह जरूर किया था, कि ऐसे उच्चकोटि के साधक के दर्शन अवश्य करना, महान पुरुषों के दर्शन से ही आधी समस्याएं मिट जाती हैं।

काठमांडू पहुंचने पर मेरा प्रथम और मुख्य कार्य भुर्भुआ बाबा के दर्शन करना ही था, अतः प्रातः उठकर वाग्मती के उस पार पुल से जा पहुंचा। वाग्मती के उस पार काफी घना जंगल था, दिन को भी उधर जाने की हिम्मत

नहीं होती थी। गुरु भाई जब भुर्भुआ बाबा से कुछ वर्षों पूर्व मिला था, तो बड़ी कठिनाई से उनकी कुटिया को पा सका था, अतः आते समय उसने पेड़ों पर एक विशेष प्रकार के निशान चाकू से बना दिये थे, जो अमिट हो गये थे; गुरु भाई ने वे गुप्त चिन्ह मुझे बता दिये थे, जिसके सहारे मैं आसानी से बाबा की कुटिया तक पहुंच सकता था।

प्रातःकाल का समय था, मैं जब जंगल की ओर बढ़ा, तो एक-दो ग्रामीण बुजुर्गों ने मुझे उधर जाते देख टोका भी और बताया कि इस तरफ एक भयानक नरभक्षी शेर है, जो एक बाबा का पालतू शेर है। इस तरफ जो भी मनुष्य गया, वह वापिस नहीं लौटा, अतः अब इधर वर्षों से कोई जाने की हिम्मत नहीं करता। आप इधर जाकर क्यों अपने प्राणों के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं?

मैंने उन ग्रामीण भाइयों की बातें सुनी अवश्य, पर शेर और संत का रहस्य मैं समझ रहा था, अतः मुस्कुराकर आगे बढ़ गया।

वास्तव में काफी घना जंगल था, पर प्रसन्नता थी, कि मुझे गुरु भाई द्वारा बताये हुए चिन्ह पेड़ों पर मिल गये थे और उसके सहारे-सहारे मैं आगे बढ़ रहा था। लगभग ग्यारह बजे मैं कुटिया के पास पहुंचा।

कुटिया सामान्य सी थी, दो पेड़ों के बीच के स्थान को घास-फूस से ढककर झोपड़ी बना दी थी और ऊपर से भी ऐसी ही व्यवस्था कर दी थी। धूप-छांव का अजीब सम्मिश्रण उस कुटिया में आ रहा था।

मैं जब कुटिया के पास पहुंचा, तो हृदय में अजीब-सी चिन्ता, अजीब-सा उत्साह और दुविधा थी, कुटिया का द्वार खुला था और अन्दर एक कृशकाय पर तेजस्वी वृद्ध समाधिस्थ था, कमर से नीचे एक छोटा-सा वस्त्र लपेटा हुआ था, बाकी पूरा शरीर नंगा था और उसकी छाती की एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी।

मैंने बाहर से कुटिया के भीतर झांका और मन ही मन प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। यह घटना प्रातः साढ़े ग्यारह बजे की है और इस प्रकार मुझे बैठे-बैठे शाम के साढ़े पांच बज गये, न तो उनकी समाधि खुली, न

मैं उस स्थान से हटा। मन में विचार आया— बाबा निश्चय ही उच्चकोटि के साधक हैं और जिस समाधि में रत हैं, उसको देखते हुए समाधि दस मिनट बाद भी खुल सकती है और दस दिनों बाद भी खुल सकती है . . . सोच-समझकर मैंने 'श्रांग विद्या' द्वारा उनकी समाधि तोड़ने का निश्चय किया। 'श्रांग मंत्र' या 'श्रांग विद्या' सामने वाले की समाधि को खोलने या समाधि न लगने देने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसका प्रयोग मैंने इससे पूर्व भी किया था, पर इसमें खतरा यह होता है, कि सामने वाला समाधि खुलने पर क्रोधावस्था में श्राप दे सकता है या कुछ भी विपरीत कर सकता है . . . फिर भी मैंने इस खतरे को सोच-समझ कर उठाने का निर्णय कर लिया।

ज्यों ही मैंने श्रांग मंत्र जपना शुरु किया और निश्चित बिन्दु पर पहुंचा, कि बाबा की समाधि खुल गई, उनकी आंखें फटाक से खुल गईं . . . बड़ी-बड़ी लाल सुर्ख आखें . . . रक्तिम डोरे दहकते हुए . . . मैंने दो क्षण उनकी ओर देखा, फिर आंखें नीची कर लीं . . . अपराध मुझ से हो ही गया था . . . पर वे दो क्षण भी मुझे दो कल्प की तरह लगे . . . उनकी आंखें अब भी मेरे चेहरे पर लपटें दे रही थीं, उसकी आंच से मैं बराबर झुलस रहा था . . . बोला नहीं, सिर नीचे किये बैठा रहा।

कुछ समय बाद उनके कंठ से 'हुं' घोष निकला, जिसने आस-पास के वातावरण को रोमांचित कर दिया, उस 'हुं' ध्वनि से मेरा अन्तर तक हिल उठा। मैं बोला नहीं, उनकी भेदिनी दृष्टि अभी तक मुझे घूर रही थी।

क्रोधातिरेक में अचानक चीखे – 'कौन है तू? क्यों आया है यहां? अभी शेर आ गया, तो चीड़-फाड़कर फेंक देगा . . . भाग यहां से . . .

पर मैं तो जैसे जमीन से चिपक गया था . . . जाने के लिए जो आया ही नहीं था . . . आया था रहने के लिए . . . कुछ सीखने के लिए . . . समझने के लिए।

फिर बोले – 'बताया नहीं, कौन है तू? मेरी समाधि तूने तोड़ी . . . क्यों? कहां से सीखा यह सब?'

– 'अपराध हो गया है मुझसे प्रभु! पर मेरा परिचय आप क्यों पूछ

रहे हैं? मेरा क्या सब कुछ गोपनीय है आपके सामने ? आपको तो सब कुछ पता है, कि मैं . . .

बाबा कुछ शांत हुए, बोले – 'यह सब सत्यानन्द ने तुम्हें बताया होगा' . . .

फिर कुछ रुककर बोले – 'तेरा तो गुरु भाई है न? बड़ा प्यारा बच्चा है, पर भाग्यहीन।'

मैं चुप रहा। हकीकत ही यही थी, कि मेरे गुरु भाई सत्यानन्द ने ही इन बाबा का पता दिया था और पेड़ों पर जो संकेत चिन्ह बताये थे, वे उसी ने बनाये थे।

फिर बोले – 'सच्चिदानन्द जी तुझे मिल गये . . . भाग्यशाली है रे तू?'

मैंने नजरें ऊपर उठाईं, उनकी आंखों में रोष तो अभी तक था, पर क्रोध नहीं था, धीरे-धीरे नेत्रों की दहक करुणा में परिवर्तित हो रही थी।

– 'तो सत्यानन्द ने तुझे भेज ही दिया, स्वर्ण बनाने की विधि सीखने के लिए . . . वह भी महीने भर तक यहां सिर फोड़कर गया है . . . और तू भी जायेगा . . . कोरा का कोरा' . . .

मैं क्या कहता? यहां तो सिर मुड़ाते ही ओले पड़े, अभी तो मैंने कुछ कहा ही नहीं है, तब तक तो मेरे आने का मन्तव्य ही बता दिया, कि मैं विद्या प्राप्त नहीं कर सकूंगा, कोरा का कोरा वापिस जाना होगा।

मैं बोला – 'अगर आप आज्ञा देंगे तो मैं निश्चय ही चला जाऊंगा, अगर मेरे भाग्य में कुछ भी सीखना नहीं लिखा है, तो विवशता है, मेरे भाग्य रूपी किवाड़ बंद हैं; मुझे भरोसा था, कि आपकी कृपा प्रहार से ये किवाड़ अवश्य ही खुल जायेंगे, पर' . . .

– 'बड़ा चतुर है रे तू . . . बातें तो बहुत अच्छी बना लेता है . . . ठीक है, रुक जा . . . मैं समाधि में जा रहा हूं . . . पर इस बार 'श्रांग मंत्र' का प्रयोग मत करना' . . . और मेरे उत्तर देने से पहले ही वे

समाधि में रत हो गये।

सांझ हुई, सांझ से रात और फिर प्रातः हो गया, चिड़ियां चहचहाने लगीं, ऊषा प्राची से झांकने लगी . . . सारी रात जागते बीत गई थी, न जाने के लिए कहा था और न सोने के लिए . . . जागरण से आंखें उनींदी हो रही थीं . . . बाबा जी अभी तक समाधिस्थ थे। मैं उठा, पास में ही वाग्मती नदी कलकल बह रही थी, नित्य क्रिया से निवृत्त हुआ, स्नान किया और संध्या-वंदनादि से निवृत्त होकर जब मैं कुटिया पर आया, तब भी बाबा जी उसी आसन में उसी प्रकार समाधिस्थ थे।

मैंने जल से कुटिया को लीपा और उसके बाहर झाडू लगाकर सफाई की, बाहर भी जल छिड़काव कर कुटिया को सुरम्य बनाने का प्रयास किया। इन सारी क्रियाओं में लगभग ग्यारह बज गए, बाबा जी अभी तक समाधिस्थ थे।

मैं वापिस कुटिया में पहुंचा और सामने बैठ गया, 'श्रांग मंत्र' प्रयोग करने को मना किया था, अतः विवश था . . . काठमांडू में मैं जिस सज्जन के यहां ठहरा था, उन्हें दो-चार घंटों में आने को कह आया था और रात को भी वहां नहीं जा पाया था। निश्चय ही वे चिन्ता करते होंगे और बाबा कब तक समाधि खोलें, क्या कहा जा सकता था – 'राजा जोगी अगन जल इनकी उलटी रीत' – इस छोटे से कार्य या स्वार्थ के लिए गुरुजी को स्मरण करना या उन्हें कष्ट देना उचित नहीं समझ रहा था, बड़ी विषम गति थी।

धीरे-धीरे चार बज गये . . . अभी तक उनकी समाधि टूटने का कोई क्रम नजर नहीं आ रहा था और इसके बाद सांझ, सांझ से रात और रात के बाद वापिस दिन निकल गया। दो रात्रि जागरण से थक सा गया था, उठा वाग्मती में आध-पौन घंटे नहाता रहा, तब जाकर जड़ता और थकावट दूर हुई। संध्योपासना कर जब वापिस कुटिया पर आया, तब भी बाबाजी उसी प्रकार निश्चिन्त समाधिरत थे, एकासन, ध्यानस्थ, समाधिस्थ।

मैंने एक बार फिर 'श्रांग मंत्र' जपने का निश्चय किया, यद्यपि यह आज्ञा का उल्लंघन था, पर और कोई उपाय नहीं था। गुरु स्मरण कर 'श्रांग मंत्र-साधना' प्रारम्भ की और दस मिनट भी नहीं बीते होंगे, कि उनकी

समाधि टूट गई, आंखें खुल गई, मुंह से विस्फोट हुआ . . . 'दुष्ट! . . . फिर तूने यह क्या किया?'

मैं खड़ा हो गया . . . नत नयन . . . विजड़ित . . . बोला – 'अपराध फिर हुआ, पर आप की बात सुने अड़तालीस घंटों से भी ज्यादा व्यतीत हो चुका है, मैं तो साधारण प्राणी हूं . . . इतने लम्बे समय तक एकाकी बैठे रहना . . . और फिर जब कोई आज्ञा नहीं, कोई वाणी नहीं . . . कोई उपदेश नहीं .. . तो बालहठ से यह जो कुछ भी हो गया ... जितना भी अपराध हो गया है, आप ताड़ना दें . . . मैं तो स्वीकार करूंगा ही' . . . 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'

बाबा हंस दिये – 'देख रहा था रे तेरे धैर्य को, थोड़ा और धैर्य रखना था।'

मैंने सोचा – 'और कितना धैर्य रखूं' . . . पर क्या कहता . . . बोला नहीं।

बाबा हंसे, बोले – 'पूछ! क्या जानना चाहता है?'

मैंने अपनी सारी स्थिति स्पष्ट कर दी और संक्षेप में घर छोड़ने से लगाकर उस कुटिया में पहुंचने तक की सारी बातें, सारी घटनायें स्पष्ट कर दी, यह भी बता दिया, कि मैं किस उद्देश्य से आया हूं, क्या चाहता हूं और किसने पता बताया था आदि-आदि।

बोले – 'और यह सब सुनने के बाद भी यदि स्वर्ण बनाने की विधि या 'सिद्ध सूत' बनाने की प्रक्रिया न बताऊं तो?'

निवेदन किया – 'मैं तो अपनी झोली फैलाकर खड़ा हूं, यह मेरे भाग्य और दाता की इच्छा पर निर्भर करता है, कि वह मुझे भिक्षा दे या न दे' . . .

बाबा मूड में थे . . . 'बोले – जा! कुछ सूखी लकड़ियां चुन ला।'

मैंने आज्ञा पालन में तत्परता दिखाई और सूखे कंडे व छोटी-छोटी सूखी लकड़ियां लाकर ढेर कर दी।

बोले – 'आग लगा दे इसमें . . . माचिस है तेरे पास?'

मेरे पास माचिस कहां से होती और बाबाजी के पास तो होने का प्रश्न ही नहीं था . . . पूरी कुटिया में वस्तु के नाम पर केवल बाबाजी और कमर से बंधा हुआ हाथ भर कपड़ा था।

बाबाजी ने मुझे अर्थपूर्ण नजरों से ताका . . . मैं समझ गया और रावणकृत 'आग्नेय मंत्र' से उन सूखे कंडों व लकड़ियों में आग लगा दी।

बाबाजी मुस्कुराये . . . आसन से उठकर बाहर आये . . . और अग्नि के सामने बैठ गये . . . बोले – 'लोहे को सोने में परिवर्तित होते देखना चाहता है? 'सिद्ध सूत' देखना है?'

मैंने हां भरी, तो बोले – 'मेरे आसन के नीचे जो कांच की शीशी पड़ी है, वह उठा ला।'

मैं कुटिया में गया और आसन के नीचे पड़ी शीशी को उठा लाया . . . शीशी में लगभग पाव भर सफेद चूर्ण सा था।

बाबा बोले – 'लोहे की कोई वस्तु है तेरे पास?'

मैंने इधर-उधर ताका . . . वहां लोहा कहां से आता? फिर अचानक स्मरण आया, कि मेरे जनेऊ में घर के बॉक्स की चाबी बंधी हुई थी, जो कि घर से रवाना होते वक्त भूल से बंधी रह गई थी। मैंने जनेऊ से बंधी चाबी खोलकर बाबाजी के हाथ में दे दी।

बाबाजी ने वह लोहे की चाबी, जो कि लगभग दस ग्राम वजन की थी, आग में रख दी। कुछ समय बाद वह सुर्ख लाल हो गई, बाबा जी ने दो लकड़ियों की सहायता से उस लाल सुर्ख चाबी को बाहर निकाला और उस शीशी में से एक तिनके की सहायता से लेकर मामूली सा 'सिद्ध सूत' उस पर डाला . . . धीरे-धीरे चाबी पर पानी डाला, लोहे की चाबी सोने में परिवर्तित हो चुकी थी।

बाबा जी ने वह चाबी उठाकर मुझे दे दी और बोले – 'सोने की है न?'

मैंने कहा— 'हां बाबा जी!'

बोले — 'अब काठमांडू चला जा . . . शाम को पांच बजे आ जाना, अभी मैं किसी कारण से अकेला रहना चाहता हूं।'

मैंने उनके चरण स्पर्श किये . . . और प्रदक्षिणा कर उनकी आज्ञा से रवाना हो गया, चाबी मेरी जेब में थी।

काठमांडू पहुंचा, तो आश्रयदाता की जान में जान आई। वे चिन्ता कर रहे थे, जो कि स्वाभाविक थी . . . इधर-उधर की बातचीत के बाद मैंने वह चाबी उनके सामने रखी और कहा — 'किसी ऐसे सुनार के पास ले चलो, जो इसे परखे। मैं इसे बेचना चाहता हूं।'

हम दोनों उनके एक स्वर्णकार मित्र के यहां पहुंचे और चाबी उनके सामने रख दी। उसने अच्छी तरह परखकर कहा — 'चाबी असली सोने की है और शुद्ध तेजाबी सोने की बनी हुई है, अगर बेचना चाहो, तो अभी दाम दे दूं।'

मैंने चाबी उठाकर अपनी जेब मे रख ली, बोला — 'बेचनी नहीं है, मालूम ही करना था।'

हम दोनों घर आ गये और आश्रयदाता को कहा — 'मैं बाहर जा रहा हूं। शायद कल सुबह आ जाऊंगा या तीन-चार दिन बाद, तुम चिन्ता मत करना।'

शाम को पांच बजे के लगभग मैं कुटिया पर जा पहुंचा, बाबाजी कुटिया में नहीं थे। मैंने कुटिया साफ की, आसन को झटक कर पुनः बिछाया, आसन के नीचे सिद्ध सूत की शीशी ज्यों की त्यों पड़ी थी, इसके अलावा भी छोटी-छोटी तीन चार शीशियां पड़ी थीं, जिनमें कुछ द्रव्य पदार्थ थे।

मैं कुटिया के बाहर आया, बाबा जी सवेग एक तरफ से आ रहे थे। पास आकर बोले — 'आ गया तू!'

— 'हां प्रभु!'

बाबा बोले नहीं, चुपचाप बैठ गये, चिन्तनपूर्ण चेहरे पर कुछ पीड़ा

और कुछ उदासी के भाव थे।

सांझ के धुंधलके में बाबा ने अपना मौन तोड़ा, बोले — 'तू अपने घर चला जा, बेकार यहां समय नष्ट मत कर . . . कोई फायदा नहीं, यह सब सीख कर' . . . और बाबा कुटिया में जाकर सो गये।

मैं तो सन्न रह गया, मुझे तो ऐसा कोई भरोसा ही नहीं था, कि बाबाजी मना कर देंगे . . . अब रुकना भी व्यर्थ था . . .बाबा जी के हठ के बारे में मैं भी सुन चुका था, कि एक बार जो कह देते हैं, टस से मस नहीं होते।

मैं भी कुटिया में पहुंचा, बाबा सो रहे थे . . . मैंने पैर दबाने का विचार किया और पास में बैठकर पैर दबाने लगा, बाबा कुछ बोले नहीं।

धीरे-धीरे अंधेरा घिर आया, रात हो गई . . . कलाई घड़ी में देखा तो रात के ग्यारह बज रहे थे . . . मन में तूफान मचल रहा था . . . कितने अरमानों से मैं यहां आया था . . . क्या भूल हो गई मुझसे? मैं या मेरे भाग्य में ही यह विद्या सीखनी नहीं बदी है क्या . . . बाबाजी के पास स्वर्ण में परिवर्तित करने के लिए जितना सिद्ध सूत है, उससे तो हजार मन लोहे को सोने में परिवर्तित किया जा सकता है।

और उसी समय किसी कुत्सित अन्न के भाव से मेरे मन में विचार उठा - 'यदि उस शीशी को ही उठाकर ले चलूं तो . . . इससे जीवन भर धनवान बना रहा जा सकता है।'

बाबा खर्राटे भर रहे थे, एक क्षण के लिए विचार आया, कि इस सिद्ध सूत की शीशी को अभी उठाकर ले चलूं . . .

. . . कि बाबा जाग गये . . . बोले — 'नारायण!'

मैं चौंका, विचार क्रम टूटा, बोला — 'हां प्रभु!'

— 'चुराकर क्यों ले जाना चाहता है, शीशी को मांग ले' . . . उन्होंने मेरी ओर ताका।

[illegible]

मेरा चेहरा फक् हो गया, कुछ ऐसा लगा, जैसे मेरे दोनों गालों पर हजारों-हजार तमाचे जड़ दिये हों, उस समय तो धरती फट जाती, तो निश्चय ही मैं उसमें समा जाता और निश्चय ही इससे मुझे सुख मिलता . . . पापी के घर का अन्न मेरे पेट में गया, कि ऐसे कुत्सित विचार मेरे मन में उठे . . . जीवन में पहली बार इतने घृणित विचार कैसे आये . . . आंखें अपमान से . . . आंसुओं से भर गईं . . . जीवन बोझिल सा लगने लगा और जोर-जोर से हिचकियां भरने लगा।

बाबा उठकर बैठ गये, आसन के नीचे से वह शीशी निकाल कर मेरे सामने रखते हुए बोले – 'रो क्यों रहा है रे पगले! तुझे शीशी ही तो चाहिए . . . ले जा इसे' . . . और मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे।

मैं क्या कहता? मुझसे कितना भारी अपराध हो गया था, क्या यह कलंक जीवन में मिट सकेगा? – मैं उठा और कुटिया से बाहर निकल आया।

बाबा मेरे पीछे-पीछे आये और मुझे साथ लेकर वाग्मती की ओर चल दिये, रात का लगभग एक बज रहा था और हम दोनों नदी के किनारे बैठ गये।

बाबा बोले – 'तू ने एक अपराध तो किया ही है और अब नदी में डूब कर प्राण गंवाने का दूसरा अपराध मत करना . . . तू जब चला था, तभी समझ गया था, इसीलिए तेरे साथ-साथ था, तुझे इस जीवन में कुछ करना है . . . इस जीवन पर अब तेरा हक नहीं . . . मेरा हक है . . . तेरे गुरु सच्चिदानन्द जी का हक है . . . तुझे क्या अधिकार है, इस प्रकार अपने आपको विसर्जित करने का?'

मैंने बाबा की तरफ देखा, उनकी आंखों में करुणा थी, स्नेह और दया का आलोक था, मैं उस नदी के किनारे ही बाबा के चरणों में गिर पड़ा . . . आंखें अब भी बरस रही थीं और बाबा के चरणों को भिगो रही थीं।

बाबा ने थपकी देकर मुझे उठाया, कुटिया पर ले गये और अपनी इच्छा से ही सिद्ध सूत बनाने की पूरी प्रक्रिया समझाई . . . यही नहीं, अपने

सामने सिद्ध सूत बनवाया और उसके माध्यम से मेरे ही हाथों से उस सिद्ध सूत के सहयोग से लोहे को सोने में परिवर्तित करवाया।

इस घटना के बाद करीब पन्द्रह दिन बाबा के पास रहा। सिद्ध सूत के अलावा भी उन्होंने कई मंत्र साधनायें समझायीं। उन्होंने गुरु-शिष्य का भाव न रखकर मित्रवत् भाव रखा, धीरे-धीरे घनिष्ठता बढ़ी और आयु में इतना अधिक अंतर होने पर भी मित्रवत् सम्बन्ध बने . . . , आज मैं बाबा को अत्यन्त निकट का मित्र मानता हूं। 'काम्य साधना' से कई बार बातें इसके बाद भी हुई हैं।

वास्तव में यदि देखा जाय, तो डॉ0 श्रीमाली के साधु दर्शन व जो साधु प्रसंग यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, उनका यदि संग्रह किया जाय, तो एक बहुत बड़ा पोथा बन जायेगा।

इनके अतिरिक्त डॉ0 श्रीमाली जिन महर्षियों या साधुओं से मिले, उनमें से कुछ साधुओं का विवरण निम्न है –

मां बाबा

हिमालय स्थित 'देव आश्रम' के संस्थापक संचालक 'मां बाबा' अपने आप में एक विभूति हैं। डॉ0 श्रीमाली इनके आश्रम में लगभग चार महीने रहे और 'शक्तिपात' की विशेष दीक्षा ली, इसके अतिरिक्त 'कुण्डलिनी जागरण', 'उर्ध्व विरोचन', 'अंतरिक्ष साधना' आदि सीखी। वास्तव में ये साधनाएं अद्‌भुत हैं तथा प्राणमय कोष को झंकृत करने का एकमात्र उपाय है। आज भी मां बाबा सक्रिय हैं और काम्य प्रयोग द्वारा डॉ0 श्रीमाली से कई बार वार्तालाप होता है।

पत्थर बाबा

मंत्र शक्ति के अद्‌भुत जानकार व सिद्धहस्त हैं 'पत्थर बाबा', 'परकाया साधना' का रहस्य डॉ0 श्रीमाली ने इन्हीं से समझा था, ये बाबा साधकों में वंदनीय एवं पूज्य माने जाते हैं। स्वेच्छा से अपनी काया छोड़कर

अन्य किसी की काया में प्रवेश करना और फिर अपनी स्व काया में आ जाना, एक ही समय में दो स्थानों पर दिखाई देना आदि 'परकाया साधना' कही जाती है, बदरिकाश्रम के आसपास इनका अधिकतर विचरण क्षेत्र है।

पं० जगन्नाथ

शांत व सरल गृहस्थ होते हुए भी अद्भुत साधक, सरस्वती रहस्य, लक्ष्मी रहस्य, हनुमत् रहस्य, पुत्रेष्टि यज्ञ रहस्य, काम्य साधना, अनंग साधना, पौरुष प्राप्ति के लिए ब्रीह साधना आदि इन्हीं से समझी थी, कुछ साधनाएं नीचे दे रहा हूं –

1. लक्ष्मी साधना – दरिद्रता नाश, लक्ष्मी प्राप्ति व व्यापार वृद्धि आदि में पूर्ण सफलता के लिए।
2. सरस्वती साधना – स्मरण शक्ति बढ़ाने व शीघ्र स्मरण करने तथा शीघ्र साधना पक्ष में सफलता प्राप्ति हेतु।
3. काम्य साधना – प्रत्येक प्रकार की मनोकामना पूर्ण करने के लिए।
4. अनंग साधना – मनोनुकूल पति या पत्नी प्राप्ति के लिए, शीघ्र विवाह के लिए या प्रेम के क्षेत्र में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए।
5. ब्रीह साधना – पौरुष प्राप्ति या नामर्दी दूर करने के लिए या पत्नी रमण में पूर्णता प्राप्त करने के लिए।
6. पुत्रेष्टि साधना – पुत्र प्राप्ति के लिए।
7. गणेश साधना – उच्छिष्ट गणपति प्रसन्नार्थ।
8. हनुमत् साधना – पंचमुख हनुमत प्रसन्नार्थ।
9. म्रं साधना – जेल से मुक्त होने के लिए।

10. विजय साधना — किसी प्रतिस्पर्द्धा में पूर्ण विजय प्राप्ति के लिए।
11. स्तम्भन साधना — शत्रुओं को परास्त करने के लिए।
12. सौभाग्य साधना — पूर्ण पति सुख व सौभाग्य प्राप्ति के लिए।
13. रोग मुक्त साधना — किसी भी प्रकार की रोग से मुक्ति के लिए।
14. रक्षा साधना — किसी भी प्रकार के तांत्रिक प्रयोग, मारण मोहन, उच्चाटन आदि से मुक्ति पाने के लिए।
15. भ्रं साधना — भूत, प्रेत, पिशाच भय से मुक्ति हेतु।
16. शिव साधना — सामाजिक सफलता व सिद्धि प्राप्त करने हेतु।
17. मनसा साधना — दूसरों के मन के विचारों को जानने के लिए।
18. पंचांगुली साधना — पूर्ण भविष्य एवं भूतकाल बताने के लिए।
19. सम्प्रज्ञान साधना — ओजस्वी वक्ता बनने हेतु।
20. भूगर्भ साधना — पृथ्वी में दबे धन आदि की जानकारी के लिए।
21. आनन्द साधना — मानसिक परेशानियों से पूर्णतः मुक्ति पाने के लिए।

डॉ0 श्रीमाली ने पण्डित जगन्नाथ जी के पास काफी समय तक रह कर विभिन्न साधनाओं को समझा, पूर्णता प्राप्त की व प्रयोग कर सिद्ध किया।

श्याम बाबा

कृशकाय पर मंत्र शास्त्र में सिद्धहस्त, दुर्गा के परम भक्त। डॉ0 श्रीमाली ने इनसे 'शक्ति-तत्त्व', 'काली साधना' व 'दुर्गा साधना' समझीं, मंत्रात्मक दुर्गा साधना के ये एक मात्र विशिष्ट विद्वान् हैं, जो विश्व में सर्वश्रेष्ठ है।

ओंकार स्वामी

साबर मंत्रों के जानकार हैं तथा इस क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माने जाते हैं, साबर मंत्रों के जानकार इन्हें 'गुरुजी' के नाम से पुकारते हैं, इनका महत्त्व इसी बात से आंका जाता है, कि साबर मंत्रों को जानने वाला सर्वप्रथम ओंकार बाबा का स्मरण करके ही कार्य प्रारम्भ करता है, चाहे उसने ओंकार बाबा को देखा हो या न देखा हो; डॉ0 श्रीमाली ने इनसे कई साबर मंत्र समझा, साधनाएं कीं व प्रयोग में लेकर पूर्णता एवं सफलता से परखा। कुछ साबर मंत्र साधनाओं का नाम नीचे दे रहा हूं—

1. शरीर रक्षा का मंत्र
2. पेट दर्द शांत करने का मंत्र
3. मृत पुत्र दोष निवृत्ति
4. पाचन क्रिया तेज करने का मंत्र
5 दांत दर्द दूर करने का मंत्र
6. सिर दर्द दूर करने का मंत्र
7. नेत्र रोग मिटाने का मंत्र
8. अर्श निवारण (मस्सा या बवासीर मिटाने का मंत्र)
9. पीलिया रोग मिटाने का मंत्र
10. विष भय दूर करने का मंत्र
11. प्रेत बाधा निवृत्ति
12. नवग्रह दोष निवारण
13. पागल कुत्ता के काटने पर रोग निवारण का मंत्र
14. मृगी या बेहोशी दूर करने का मंत्र
15. दूध वर्धन के लिए मंत्र
16. वाक् सिद्धि
17. अग्नि शांत करने का मंत्र
18. चोर भय रक्षा मंत्र
19. सुखी प्रवास मंत्र

20. व्यापार वृद्धि मंत्र
21. गर्भ रक्षा मंत्र

इसके अलावा भी सैकड़ों ऐसे छोटे-मोटे साबर मंत्र हैं, जो स्वामी जी ने सिखाये थे।

अखंडानन्द स्वामी

बाबा का निवास केदारनाथ के पास है। मंत्र क्षेत्र में ये अद्वितीय हैं, डॉ0 श्रीमाली पर इनका भी ऋण है, इनसे जो साधनाएं समझीं व सिद्धि प्राप्त की उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

1. उच्छिष्ट गणपति साधना
2. हरिद्रा गणेश प्रयोग
3. महामृत्युञ्जय साधना
4. मृत्युञ्जय साधना
5. वराह मंत्र
6. दधिवामनाख्य मंत्र
7. सूर्य मंत्र
8. अग्नि मंत्र
9. रामप्रोक्त हनुमन्साधना
10. लांगूलास्त्र शत्रुंजय साधना
11. आपदुद्धारक बटुक साधना
12. बटुक भैरव वीर साधना
13. कामदेव साधना
14. क्षेत्रपाल साधना
15. कुबेर मंत्र साधना
16. धनपुत्रप्रद विधान
17. गायत्री साधना
18. षणमुख गायत्री साधना

19. आकाशचारी साधना
20. जलचारी साधना
21. अन्नपूर्णा साधना
22. छिन्नमस्ता साधना
23. बगलामुखी साधना
24. मातंगी साधना
25. धूमावती साधना
26. चण्डिका साधना
27. दक्षिणकाली साधना
28. श्मशानकाली प्रयोग
29. वागीश्वरी साधना
30. कात्यायनी साधना
31. त्रिपुर सुन्दरी साधना
32. एकाक्षरी भुवनेश्वरी साधना
33. त्रिपुर भैरवी साधना
34. लक्ष्मी साधना
35. अष्ट लक्ष्मी साधना
36. मणिकर्णिका मंत्र साधना
37. इन्द्राक्षी साधना

मकरंद स्वामी

स्वामी अखण्डानन्द जी की तरह मकरंद स्वामी जी भी मंत्र साधना में सिद्धहस्त हैं। राग, द्वेष, लोभ, मोह से दूर गंगोत्री के पास इनका स्थान है, डॉ0 श्रीमाली ने कुछ साधनाएं इनसे भी सीखी थीं, उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं –

1. घण्टाकर्ण साधना
2. विचित्रा यक्षिणी साधना

3. हंसी साधना
4. भक्षिणी साधना
5. विशाला साधना
6. घंटा यक्षिणी साधना
7. कालकर्णी साधना
8. शंखिनी साधना
9. चांद्रा साधना
10. मेखला साधना
11. शतपत्रि साधना
12. सुलोचना साधना
13. कपालिनी साधना
14. विलासिनी साधना
15. नटी साधना
16. मनोहरा साधना
17. अनुरागिणी साधना
18. भामिनी साधना
19. पद्मिनी साधना
20. स्वर्णवती साधना
21. धनदा यक्षिणी साधना
22. जयार्क साधना
23. संतोषश्वेता साधना
24. राज्यदा साधना
25. अपामार्गी साधना
26. उच्छिष्ट भैरव साधना
27. महामाया साधना
28. भूत लोचना साधना
29. शशिदैव्य साधना
30. कुण्डला साधना

31. रत्नमालायक्षिणी साधना
32. उर्वश्य साधना
33. अष्ट किन्नरी साधना
34. मञ्जुघोष साधना
35. कुण्डलकात्याभवी साधना
36. कर्ण पिशाचिनी साधना
37. वर्ताली साधना
38. वैताली साधना
39. प्रेत साधना
40. स्वप्नेश्वरी साधना
41. पूर्व जन्म दर्शक साधना

घुरुण्ड बाबा

यमुनोत्री से आगे भैरव शिला के पास रहने वाले घुरुण्ड बाबा भी मंत्र साधना में अद्वितीय माने जाते हैं, चेटक साधना में ये निष्णात हैं, डॉ. श्रीमाली का कुछ समय इनके पास भी व्यतीत हुआ था तथा इनसे भी कई कुछ साधनाएं समझी थीं, उनमें से कुछ के नाम अंकित हैं –

1. वट यक्षिणी चेटक
2. लिंग चेटक
3. भैरव चेटक
4. काली चेटक
5. बटुक चेटक
6. करालिनी चेटक
7. नानासिद्धि चेटक
8. मणिभद्र चेटक
9. हंसबद्ध चेटक
10. भूतेश्वर चेटक

11. किंकर यमस्य चेटक
12. मंत्र वाद चेटक
13. ज्वालामालिनी चेटक
14. देवांगना चेटक
15. शतयोजन दृष्टि चेटक
16. अनाहार चेटक
17. आहाटकरण चेटक
18. मंडूक चेटक
19. यंत्र भंजय चेटक
20. मार्ग चेटक
21. गुप्त वार्ताली चेटक
22. जल अदृश्य चेटक
23. वायु बन्धन चेटक
24. अदृश्य चेटक
25. रसायन चेटक
26. निधि कज्जल चेटक
27. अघोर चेटक
28. आसुरी कल्प चेटक
29. वज्र प्रस्तारिणी चेटक
30. सर्वोपरि चेटक
31. अंकोल चेटक

इसके अलावा भी डॉ0 श्रीमाली अन्य कई उच्च-स्तरीय साधुओं के संपर्क में आये और उनसे कुछ समझा भी, डॉ0 श्रीमाली ने इस सम्बन्ध में जो कुछ भी नाम परिगणन किये उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

1. आबू के स्वामी पूर्णानन्द जी
2. आबू के स्वामी योगीश्वरानन्द जी
3. लक्ष्मण झूला (ऋषिकेश) के किंकर बाबा

4. मंडेला के नंगे बाबा या नागा बाबा
5. मां भैरवी
6. षणमुखेश्वर स्वामी
7. स्वामी मोहनानन्द
8. कश्मीर के शोभना बाबा
9. फक्कीर स्वामी
10. हिमालय के पाताल बाबा
11. स्वामी गिरजानन्द
12. देहरादून के पगला बाबा
13. स्वामी दिगम्बरार्चन
14. अक्षय बाबा
15. नेपाल के त्रिंगु स्वामी
16. बाल योगी
17. नेपाल के कामरूप बाबा
18. गंगोत्री के तीर्थानन्द
19. मां भुवनेश्वरी
20. पालू स्वामी
21. भक्त मुरली चैतन्य

इसके अतिरिक्त भी अन्य कई साधुओं, संन्यासियों एवं सिद्धों के सम्पर्क में डॉ0 श्रीमाली रहे और उनसे सीखा भी, इन सबका ऋण आज भी डॉ0 श्रीमाली स्वीकार करते हैं। परम पूज्य गुरु सच्चिदानन्द जी के शिष्य डॉ0 श्रीमाली ने जो कुछ परिश्रम एवं साधना कर मंत्र एवं ज्योतिष का उत्थान किया है, इसके लिए यह देश और विश्व कृतज्ञ रहेगा, इसमें संदेह नहीं।

लक्ष्य प्राप्ति

परम पूज्य श्रद्धेय स्वामी सच्चिदानन्द जी इस देश के ही नहीं सम्पूर्ण विश्व की एक विशिष्टतम एवं अप्रतिम अद्वितीय विभूति हैं, जिनके स्मरण

मात्र से ही योगी जन रोमांचित हो जाते हैं, साधक उनका स्मरण कर अपनी साधना प्रारंभ करते हैं, साधु उनके दर्शन को लालायित रहते हैं।

योगीराज सही अर्थों में योगीराज हैं, उनकी कितनी आयु है, यह कह सकना सम्भव नहीं, वे चिरयुवा हैं तथा मंत्र शक्ति व आध्यात्मिक साधना के अक्षय भण्डार हैं, वे इच्छानुसार स्वरूप परिवर्तित करने में सक्षम हैं, काल एवं दूरी उनके लिए महत्त्व नहीं रखती, भारत के विशिष्टतम संत, साधु, संन्यासी एवं योगी जिन्होंने भी जीवन में एक बार उनके दर्शन किए हैं, वे अभिभूत हो गये हैं, कुछ साधक जिनको योगीराज के दर्शन हुए हैं, उनके शब्द स्वामी जी के प्रति निम्न प्रकार से है –

* योगीराज सच्चिदानन्द जी विश्व की अन्यंतम विभूति हैं, इस विश्व को उन पर गर्व है।

— 'स्वामी ज्ञानामृतानन्द'

* स्वामी सच्चिदान्द जी वस्तुतः योगीराज हैं, जिन्हें इस विश्व में कुछ भी अप्राप्य नहीं।

— 'बाबा श्यामदास'

* योगीराज के सामीप्य का एक क्षण विश्व की सर्वोच्च निधि से भी ज्यादा मूल्यवान है।

— 'स्वामी योगत्र्यानन्द'

* योगीराज सच्चिदानन्द जी चिर युवा हैं, चिर श्रेष्ठ हैं, विश्व की अद्वितीय विभूति हैं, मैं अपने जीवन का समस्त पुण्य, समस्त साधना, समस्त तपस्या भेंट करने को तैयार हूं, यदि वे मुझे पांच मिनट साथ रहने का अवसर दें।

— 'स्वामी अजरा'

* स्वामी सच्चिदानन्द जी के बारे में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है. . . . काश! वे मेरे गुरु होते।

— 'योगीराज प्रणवानन्द'

जहां भारतीय योगियों, महर्षियों एवं संतों ने उन्हें विश्व वंद्य माना है, वहीं पाश्चात्य संतों ने भी उनके प्रति श्रेष्ठतम भावनाएं व्यक्त की हैं, इसमें कोई दो राय नहीं।

इसमें दो राय नहीं कि योगीराज़ स्वामी सच्चिदानन्द जी साधना क्षेत्र में अद्वितीय हैं, हिमालय के दुर्गम और उत्तुंग शिखरों एवं गिरि-गह्वरों में उनका निवास स्थान है, काल और दूरी का उनके जीवन में कोई महत्त्व नहीं, एक क्षण में वे हिमालय की किसी शिला पर देखे जा सकते हैं, तो दूसरे ही क्षण वे हरिद्वार की पावन गंगा तट पर भी विचरण करते पाये जा सकते हैं, एक ही समय में कई रूप धरना तथा कई स्थानों पर एक ही समय में दिखना कोई असम्भव और आश्चर्य की बात नहीं।

योगीराज की शिष्यता प्राप्त करना कई जन्मों का पुण्योदय माना जा सकता है, उनके कुछ गिने-चुने ही शिष्य हैं और उनमें डॉ0 श्रीमाली भी एक हैं — एक नहीं निकटतम शिष्य हैं, योगीराज के प्रिय हैं, हृदय के निकट हैं.... उनसे मिलने और शिष्यत्व प्राप्त करने की घटना भी विलक्षण है।

डॉ0 श्रीमाली ने अपनी डायरी में इस घटना का वर्णन किया है, जिसका कुछ अंश मैं आगे की पंक्तियों में स्पष्ट कर रहा हूं -

✳ ✳ ✳

बाबा (हरिओम बाबा) से बिछुड़े हुए लगभग एक महीना हो गया था। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था, चैन दिन को न था और न रात को; साधना में भी रह-रहकर मन उचट जाता। अभी तक मुझे कोई गुरु प्राप्त न हो सका था, जिसके चरणों में बैठकर अभय प्राप्त कर सकूं। मेरा मन वैराग्य की तरफ ज्यादा झुकता चला जा रहा था, गृहस्थ से अभी तक पिंड छुड़ा नहीं सका और वैराग्य पूरी तरह ले नहीं पाया था, मेरा मन त्रिशंकुवत् हो गया था . . . और यह ऊहापोह जब जरूरत से ज्यादा बढ़ गई तब एक दिन शाम को मैंने बाबा जी का आवाहन किया।

जब पूर्ण समाधिस्थ हुआ तब बाबा दिखाई दिये, जैसे कि टेलीविजन

के पर्दे पर बिंब उभरता है, बाबा मेरे सामने थे, निश्छल, निस्पृह, वीतराग, त्यागी, सौम्य, मधुर मुस्कान लिये।

बाबा ने पूछा – 'क्यों ?'

– 'मेरा मन नहीं लग रहा है, बाबा! मैं अभी तक अंधकार में हूं, ध्यानस्थ होने की चेष्टा करता हूं, तो पूर्ण तन्मयता नहीं आ पाती। घर जाने की इच्छा नहीं हो रही है – आपसे बिछुड़ने के बाद लगभग यह महीना व्यर्थ सा ही गया है – अभी तक गुरु भी प्राप्त नहीं हो सके हैं' . . . कहते-कहते मेरा गला भर आया।

कल इसी समय यहीं पर तुम्हें एक साधु मिलेगा, तुम उसी के साथ चले जाना; शीघ्र ही गुरु प्राप्ति होगी' – और बाबा एकदम से अंतर्धान् हो गये।

मेरी ध्यान मुद्रा खटाक् से टूट गई, चैतन्य हुआ, बाबा से मिलना अनुभव कर शरीर पुलकित हो गया; उस दिन मुझे गहरी नींद आई।

दूसरे दिन संध्या के समय उसी स्थान पर एक प्रौढ़ संन्यासी से भेंट हुई, उम्र होगी लगभग पचपन-साठ बरस, आते ही बोले – 'गुरुजी ने आपको बुलाया है, अभी चलना होगा।'

– 'कौन गुरुजी ?' मैंने सहज-स्वाभाविक रूप से प्रश्न किया।

संन्यासी बंधु बोले नहीं और आगे पैर बढ़ा लिये।

लाचार होकर मैं भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ा, लगभग पांच घण्टों के बाद मेरा ही पहला बोल फूटा – 'बंधु! थक गया हूं, थोड़ा विश्राम कर लें।'

अब तक वह प्रौढ़ संन्यासी एक शब्द भी नहीं बोला था, वह बराबर मेरे आगे चलता जा रहा था, मेरे यह कहने पर भी वह रुका नहीं और पीछे मुड़कर देखा, वह बराबर आगे बढ़ता रहा।

मैंने दूसरी बार कुछ नहीं कहा, उसी प्रकार उसके पीछे-पीछे चलता रहा।

प्रातः लगभग साढ़े तीन बजे हम एक आश्रम में पहुंचे – शांत-सुरम्य, चित्ताकर्षक। आश्रम के पास आते-आते वह प्रौढ़ संन्यासी कहीं लुप्त हो चुका था, मैंने आधे घण्टे एक वृक्ष के नीचे विश्राम किया, मुझे वहां कहीं कोई व्यक्ति दृष्टिगोचर नहीं हुआ, जब थकावट गई तो उठा खड़ा हुआ। आश्रम नदी के किनारे बसा हुआ था, मैंने जी भरकर स्नान किया, संध्यावंदन किया और ध्यानस्थ हो गया। जब आंख खुली, उस समय भगवान भास्कर प्राची की खिड़की से मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

आश्रम में थोड़ी बहुत चहल-पहल शुरू हो गई थी, इक्का-दुक्का साधु इधर-उधर घूमते नजर आ रहे थे। मैं वहीं वृक्ष के नीचे बैठा यह सब देख रहा था, जो संन्यासी मुझे वहां तक लेकर आया था, वह कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था।

लगभग साढ़े नौ बजे मेरा बुलावा आया और मुझे आश्रम से लगभग एक फर्लांग दूर कुटिया के पास ले जाकर खड़ा कर दिया गया। कुटिया के बाहर एक साधु खड़ा था।

मुझे जो लेकर आया था, उसने उस युवा साधु से कुछ कहा, जो मैं समझ नहीं सका। युवा साधु ने कपड़ों की थैली बाहर ही रखवा दी और मुझे कुटिया के अन्दर जाने की अनुमति दे दी।

अन्दर का दृश्य अद्‌भुत था . . . ऐसा शीतल प्रकाश कि जैसे सैकड़ों चन्द्रमा एक साथ चमक रहे हों . . . अन्दर कुटिया के बीचों-बीच 'परमहंस स्वामी सच्चिदानन्द जी' स्थित थे—शांत तेजस्वी। मैंने पहले-पहले पूज्य गुरुजी के सिर के चतुर्दिक प्रकाश किरीट देखा, तेजस्वी मुख-मंडल देखे थे, पर प्रकाश-किरीट पहली बार ही दिखाई दिया।

वृद्ध शरीर, गौर वर्ण, लम्बा डील-डौल, प्रशस्त ललाट, तेजस्वी मुख-मंडल और शांत, सरल, प्रेमपूर्ण आंखें . . . देखता ही रह गया टकटकी बांधे। आंखें वहां से हटने का नाम ही नहीं ले रही थीं, जैसे काफी समय से प्यासी हों और आज छककर अमृत पी रही हों, अबाध निर्द्वन्द्व गति से।

उन्होंने उंगली से मुझे बैठने का संकेत किया, मैं बैठ गया, अब

मैंने कुटिया में दृष्टि डाली, साफ, पवित्र एवं सादगीपूर्ण कुटिया में बांईं और एक अन्य साधु समाधिस्थ थे।

मेरी सारी इन्द्रियां एक बार पुनः गुरु चरणों में लग गईं, आत्मा कह रही थी – 'वह सामने हैं जिनकी तुम खोज कर रहे थे, जिनके लिए आज तक तुम इतने बरसों से भटक रहे हो, वे यही हैं, इन्हीं को प्राप्त करने से हृदय की गांठ खुल सकती है, संशयों के श्रापों का छेदन हो सकता है, समस्त दुष्कर्मों का क्षय हो सकता है।'

मिद्यते हृदय-ग्रंथिः, छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

'संसार सिंधु को पार करने का एकमात्र साधन है गुरु, जो कि समर्थ होता है, इस प्रकार की बाधाओं से पार पहुंचाने के लिए।'

'शारदा तिलक' का यह कथन स्मरण हो आया–

संसार सिन्धोस्तरणैक हैतून्।
दधे गुरुन् मूर्ध्नि शिव स्वरूपान्।।
रंजासि येषां पद पंकजानां।
तीर्थाभिवेक श्रियमावहन्ति।।

मैं परमहंस स्वामी के चरणों में झुक गया, गुरु के मुंह से पहला वाक्य निस्सृत हुआ–

"अभयास्तु!"

मैं उसी क्षण अपने आपको अभय समझने लगा, हो सकता है, लोगों को यह आश्चर्यजनक लगे, पर उस समय मेरे चारों ओर का माहौल ही ऐसा था, और फिर कई बार कई रूपों में मुझे संकेत मिल चुका था, कि मुझे ही योग्य गुरु की प्राप्ति होगी और वे गुरु परमहंस स्वामी सच्चिदानंद ही होंगे।

यह था, मेरा गुरु से प्रथम साक्षात्कार। इसके बाद तो उनकी असीम

कृपा निरंतर बनी रही और अपार्थिव रूप में उनका मार्गदर्शन आज भी मेरे सामने है।

इस घटना के बाद बीस दिनों तक मुझे अलग रखा गया, गुरु भाई विज्ञानानन्द मुझे साधना के उच्च स्तरों का अभ्यास कराते, चौबीस घण्टों में बीस घण्टे इस कार्य में बीतने लगे, बाहर की दुनिया से मैं कट चुका था, मैं और केवल विज्ञानानन्द ही थे .... बराबर दीक्षा-मार्ग के पहले की पृष्ठभूमि तैयार की जा रही थी।

बीसवें दिन सायं मेरी परीक्षा हुई, परीक्षा में सफल जान इक्कीसवें दिन पूज्य गुरुदेव ने मुझे दीक्षा दी। सहस्र दल कमल प्रतिस्थापन किया और कुण्डलिनी छूकर मेरे शरीर में शक्ति संचार किया, मेरे सिर पर गुरु का पावन हाथ था और मैं उस घड़ी को अपने समस्त पुण्यों का मूल जानकर कृतकृत्य हो रहा था।

इसके बाद लगभग छः महीने मैं पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में रहा, इसके अनन्तर उन्होंने मुझे पुनः गृहस्थ पालन की आज्ञा दी और लोक में जाकर निस्पृह भाव से मनन करने की आज्ञा दी। यद्यपि मैं उस स्थान को छोड़ना नहीं चाहता था, पर गुरु-आज्ञा सर्वोपरि थी। इन छः महीनों में उन्होंने मुझे जो कुछ दिया, वह अक्षय है, मेरे जीवन का समस्त श्रेय, जीवन की अमूल्य निधि है।

* * *

एक दिन अवसर मिलने पर मैंने गुरुदेव से निवेदन किया – 'प्रभु! आप मुझे पुनः गृहस्थ में भेज रहे हैं, इसके पीछे भी कोई हेतु होगा, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, निश्चय ही मैं आपके जीवन-वृत्तांत को लिपिबद्ध करने का प्रयत्न करूंगा।"

स्वामी जी बोले – "नारायण! मेरा जीवन-वृत्तांत कागजों पर नहीं अपने हृदय पर लिखो।"

वास्तव में ही साधु-सन्तों, महर्षियों की जीवनी कागजों पर नहीं, हृदय पर अंकित करने की ही होती है।

मैंने फिर पूछा – 'तो मुझे क्या करना है?'

बोले – "तुम्हें गृहस्थ में इसलिए भेज रहा हूं, कि देश में और विश्व में ज्योतिष शास्त्र को पुनर्जीवित करो, साधना पक्ष को चेतन करो, मंत्र शास्त्र के प्रति लोगों की आस्थायें विकसित करो, और' . . .

– 'और प्रभु!'

– 'पुस्तकें तो लिखो ही, पर इसके साथ ही सजीव ग्रंथ भी तैयार करो, अगर पूरे भारत में बीस युवक भी ऐसे तैयार कर दिये, जो मंत्र-तंत्र, योग साधना, ज्योतिष आदि के उत्थान में जीवन खपाने को तैयार हों, परिश्रमपूर्वक साधना करने में विश्वास रखते हों और तुम्हारे विश्वासों की रक्षा कर सकने में समर्थ हों, तो तुम अपना परिश्रम सफल समझना।'

जब मैं गुरु आश्रम से विदा ले रहा था, तो मेरी आंखों से आंसू झर रहे थे, हिचकियों के बीच बोला – 'गुरुदेव! आप मुझे भुला मत देना।'

स्वामी जी मुस्कुराये, बोले – 'जब तू मुझे स्मरण रखेगा, तो मैं तुझे कैसे भुला सकूंगा।'

. . . उनके इस छोटे से एक वाक्य के उत्तर में कितना गूढ़ अर्थ छिपा है।

* * *

आश्रम जीवन जीते-जीते उसका अभ्यस्त हो गया था और पुनः गृहस्थ में जाने की बात स्मरण करके ही परेशान हो जाता था। एक दिन पूछ बैठा – 'गुरुवर! गृहस्थ में दुःख, बाधायें, परेशानियां, संकट और कठिनाइयां ही कठिनाइयां हैं, यदि कभी जरूरत से ज्यादा दुःख और परेशानी आ जाय तो . . .?'

बोले – 'तू कौन है? तेरी डोरी तो किसी दूसरे के हाथ में है, जब जरूरत से ज्यादा विपत्ति अनुभव हो, तो सब कुछ छोड़-छाड़ कर इष्टदेव के चरणों में साष्टांग गिर जाना . . . बस!'

और वास्तव में ही इसके बाद गृहस्थ में जब-जब भी विचलित हुआ हूं, घर में ही गुरुदेव का ध्यान करके उनके चरणों में लेट गया हूं, सारी विपद् गाथा उन्हें सुना दी और इससे मैं हमेशा बाधाओं से बच गया हूं।

***

एक बार दिन भर मैं बहुत व्यस्त रहा था, शाम को हम सब शिष्य थक कर सो गये, हठात् रात्रि को एक बजे के लगभग आंख खुल गई। बाहर झांका, तो चन्द्रमा की चांदनी बरस रही थी, मैं उठा और कुटिया से बाहर निकल आया, पूर्णमासी की रात्रि थी, अतः चारों ओर स्निग्धता, शीतलता, उज्ज्वलता बरस रही थी। मैंने नजर दौड़ाई, तो देखा, कि एक स्फटिक शिला पर गुरुदेव सिद्धासन लगाकर ध्यान मग्न बैठे हैं, उनके चारों ओर विशेष प्रकार का ओज एवं प्रभामण्डल व्याप्त है।

कोई बिरला, सौभाग्यशाली ही ऐसे क्षणों को अपनी आंखों से निहार सकेगा . . . उस दृश्य का वर्णन करना इस लेखनी के वश की बात नहीं है।

***

एक बार काफी समय तक गुरुजी से भेंट न कर सकने के कारण मन में क्षोभ हो रहा था; एक-दो बार उनको स्मरण भी किया, पर इन्द्रियातीत न हुआ। बेचैनी बढ़ गई, न भोजन अच्छा लग रहा था, न बातचीत, हर समय एक ही इच्छा, एक ही तृष्णा, एक ही विचार मन में घुमड़ता रहता, कि गुरुदेव के दर्शन हों, यदि वे आज्ञा दें, तो सिद्धाश्रम चला जाऊं . . . पर न तो स्वप्न में ही दर्शन होते थे और न कोई निश्चित आज्ञा . . .!

धीरे-धीरे एक दिन यह स्थिति हो गई, कि मुझे अपने आप से ही घृणा हो गई, जब गुरुदेव मिलना ही नहीं चाहते, तो फिर इस शरीर का प्रयोजन ही क्या है? जीवित रहने का फायदा ही क्या है?

हठात् ऐसा लगा, जैसे गुरुदेव खड़े-खड़े मुस्कुरा रहे हों, बोले–

'क्या बात है? इतनी उतावली, इतनी व्यग्रता क्यों? संयम रखाना सीख।'

***

मेरा प्रयत्न रहता है, कि हर गुरु पूर्णिमा के दिन पूज्य गुरुदेव से मिलूं और यह गुरु जी की कृपा है, कि इस दिन वे सशरीर दर्शन देते ही हैं, कई वर्षों से यह क्रम है और निभ रहा है, प्रत्येक गुरु पूर्णिमा के दिन वे अवश्य ही कोई विचार, प्रेरणा या ज्ञान देते ही हैं, उनमें से कुछ निम्न हैं–

- कार्य करते रहो, कुछ न कुछ करते रहो, अपनी इच्छा से जो कुछ भी तुम्हें उचित लगे, वह करो या फिर मैं जो कुछ भी कहूं, उसे करो . . . पर निरन्तर करते रहो।
- गुरु सेवा मन से तो करो ही, पर उससे भी ज्यादा श्रेयस्कर है, शरीर से करो।
- **'कार्यं साधये शरीरं पातये'** अर्थात् 'साधना में या कार्य में ऐसा दृढ़ संकल्प लेकर लगो, कि या तो शरीर ही नष्ट हो जाय या कार्य ही सम्पन्न हो जाय।'
- **यस्मान्नो द्विजते लोके लोकान्नो द्विजते च यः।**
  हर्षामर्ष भयो द्वेगमुक्तो यः स च मे प्रियः।।
- जीवन का सर्वश्रेष्ठ धर्म है 'सहन शक्ति'।
- **'निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनं'**

ऐसे सैकड़ों उपोद्घात हैं, जो समय-समय पर मुझे प्राप्त हुए हैं, जो मेरे जीवन के पाथेय बने हैं।

* * *

एक बार एक प्रसंग में स्वामी जी बोले – 'सच्चा साधक अपने योग बल से नवीन सृष्टि की रचना कर देता है और जब उसके हृदय में इस प्रकार की सृष्टि ज्योति प्रज्ज्वलित होती है, तब उसके शरीर से 'निरंक रश्मियां' प्रवाहित होती हैं। जिसके शरीर से ऐसी रश्मियां प्रवाहित होती हैं, उसका हिंसक पशु भी कुछ भी अहित नहीं कर सकते। प्रत्येक साधक जो वनचारी हैं, उसे इस प्रकार का अभ्यास कर लेना चाहिए।'

बाद में उन्होंने समय मिंलने पर विस्तार से इन रश्मियों के बारे में समझाया और इसकी साधना सम्पन्न कराई।

* * *

मैंने एक दिन उचित समय देखकर पूछा – 'क्या गुरुदेव पूर्व जन्म के बारे में विस्तार से जाना जा सकता है और क्या आगामी जीवन को हम ठीक प्रकार से देख सकते हैं, समझ सकते हैं?'

बोले – 'उसमें कठिन क्या है? पूर्व जन्म स्वयं का या किसी का भी जानने के लिए 'त्रिलोचन साधना' करनी चाहिए, इससे किसी भी प्राणी का पूर्व जन्म हूबहू देखा जा सकता है। आगामी जीवन को जानने के लिए 'निर्वाणी साधना' सम्पन्न करनी चाहिए, इससे उस प्राणी को देखते ही उसका आगामी जीवन चक्षुओं के सामने साकार हो उठता है।'

मेरे निवेदन करने पर उन्होंने दोनों ही साधना विधि पूर्वक समझाई, सिखाई और प्रमाणित करके दिखाई।

साधना सम्पन्न करने पर किसी प्राणी को देखते ही उसका पूर्व जन्म और भावी जीवन उसी प्रकार से स्पष्ट दिख जाता है, जिस प्रकार से हम

सिनेमा के पर्दे पर दृश्य देख रहे हों।

मेरे आग्रह पर मुझे और भाई नित्यानन्द को यह साधना गुरुदेव ने सिखाई थी।

कितना अधिक ऋणी हूं मैं पूज्य गुरुदेव का, इसका उल्लेख यह क्षुद्र लेखनी क्या कर सकती है?

मैंने डॉ0 श्रीमाली के सामने जब भी पूज्य गुरुदेव की चर्चा की, तो उनका स्मरण करके ही डॉ0 श्रीमाली पुलकित हो जाते, रोमावली खड़ी हो जाती, आंखें मुंद जाती और हाथ जुड़ जाते, चेहरे पर एक अनोखा तेज, अनोखी आभा, अनोखी दमक आ जाती, वास्तव में ही डॉ0 श्रीमाली धन्य हैं, जिन्हें इतने उच्चकोटि के साधक एवं योगीराज के चरणों में सीखने का असवर मिला और शिष्यत्व प्राप्त हुआ है।

रात को हम दोनों, एमिस और मुझे नींद ही नहीं आयी, स्वामी सच्चिदानन्द जी के बारे में जो कुछ सुनने को मिला था, वह अप्रतिम था, उनका स्मरण करते-करते कब रात बीत गई, कब भोर हो गया, कुछ पता ही नहीं चला।

मेरी पत्नी एमिस ने पूज्य गुरुदेव स्वामी सच्चिदानन्द के बारे में जितने भी और जो भी संस्मरण प्राप्त हुए, एकत्र करने में मुझे सहयोग दिया है; उसने जब-जब भी संस्मरण पढ़े हैं, आत्म विभोर हो गई है।

वस्तुतः परम पूज्य स्वामी सच्चिदानन्द जी विश्व की एक महान विभूति हैं और डॉ0 श्रीमाली का यह सौभाग्य है, कि उन्हें श्रेष्ठतम योगीराज की निकटता, सम्पर्क और साहचर्य मिला। यह हमारी वर्तमान पीढ़ी के लिए भी गौरव की बात है, कि डॉ0 श्रीमाली जैसे व्यक्तियों का मार्गदर्शन हमें प्राप्त है।

माता जी

एक भारतीय नारी अपने अन्दर
विविध स्वरूपों को समाहित की हुई होती है,
तभी तो वह कभी बेटी बन कर
अपने माता-पिता की सेवा करती नजर आती है,
तो कभी बहन के रूप में भाई से मान-मनुहार करती है,
तो कभी प्रेमिका के रूप में अपने प्रेमी के प्रति सम्पूर्ण रूप
से समर्पित हो उसके प्राणों की धड़कन बन बैठती है।
और जब वह पत्नी बनती है,
तो अपने पति के प्रति पूर्ण निष्ठावान बन कर
अपना पूरा जीवन उसके चरणों में अर्पित कर देती है।
''यह मेरा है'' जैसा उसके पास कुछ भी नहीं होता,
यदि वह सुख-सौभाग्य की कामना करती है,
तो वह भी अपने पति के लिए ही।
भारतीय नारी का एक रूप,
जिसके आगे पूरा विश्व वन्दनीय हो कर नमित होता है,
वह है – 'माता' का स्वरूप।
इस स्वरूप के कारण ही तो 'भारत' को भी
'भारत माता' शब्द से सम्बोधित करते हैं।
बड़े से बड़े ऋषि भी वन्दना करते हुए कहते हैं –
या देवी सर्वभूतेषु मातृ रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

मुझे और एमिस को जितना भी समय डॉ0 श्रीमाली के चरणों में गुजारना पड़ा, वह मेरे जीवन का सौभाग्य था, पर इस सौभाग्य को बनाने के पीछे प्रबल और स्नेहयुक्त हाथ था, तो वह डॉ0 श्रीमाली जी की धर्मपत्नी का, जिन्हें हम 'माता जी' के नाम से पुकारते और वे भी अपने पुत्रों के समान ही हमारा ध्यान रखती रहीं, हमारी छोटी से छोटी असुविधा का ख्याल रखती रहीं और हमारे ऊपर स्नेह और करुणा की वर्षा करती रहीं।

यदि मैं उपमा का सहारा न लूं, तो डॉ0 श्रीमाली धीर, गम्भीर, उन्नत और विशाल हैं, जिनकी थाह लेना या पार पाना असम्भव है, तो वहीं पूज्यनीया माता जी निर्मल गंगा के समान प्रवाहमान हैं, जिनकी स्नेहधारा में स्नान कर मन को शांति, पवित्रता, स्निग्धता और सुख मिलता है।

पूज्य डॉ0 श्रीमाली अत्यधिक व्यस्त रहते हैं, पता नहीं उनमें कितनी जीवन शक्ति है, कि अठारह-अठारह घंटे काम करके भी थकते नहीं; उनके चेहरे पर वही ताजगी दिखाई देती है, उनकी हंसी में वही मधुरता घुली रहती है और डॉ0 श्रीमाली के शब्दों के पीछे यदि कुछ रहस्य है, तो वह माता

जी की सेवा और शक्ति है।

मैं इस भारतीय नारी को देखकर दंग हूं, दिन भर कार्य में इतनी व्यस्त रहती हैं, कि एक क्षण भी सांस लेने को नहीं मिलता, दिन भर सैकड़ों आगन्तुक आते हैं, घर के भी, बाहर के भी, स्वजन भी, परिजन भी, पर क्या मजाल है, कोई भूखा चला जाय या बिना कुछ लिये चला जाय, छोटी से छोटी बात का बराबर ख्याल रखती हैं, कि कोई भूखा तो नहीं रह गया, किसी को कोई अभाव तो नहीं रह गया; मां की तरह दुलार कर, झिंझोड़ कर, झिड़की देकर, पुचकार कर, ठूंस-ठूंस कर खिलाती-पिलाती हैं, कि वह जीवन भर भूल ही नहीं सकता – सही अर्थों में वे 'अन्नपूर्णा' हैं।

– और आज डॉ0 श्रीमाली जो कुछ भी हैं, उसके पीछे पूरा हाथ इसी तपोनिष्ठ महिला का है। डॉ0 श्रीमाली के उठने से पहले ही वे उठ जाती हैं, घर में सेवक होने पर भी उनके स्नान के लिए जल आदि की व्यवस्था करती हैं और इसके बाद जब तक डॉ0 श्रीमाली जी शयन करने नहीं चले जाते, तब तक माता जी बराबर ध्यान रखती हैं, उनके संकेतों को समझती हैं . . . और डॉ0 श्रीमाली को कब क्या चाहिए, इसका उन्हें पूरा एहसास रहता है . . . इसीलिए तो हमने उन्हें 'सेवा की साक्षात् मूर्ति' कहा है।

डॉ0 श्रीमाली ने स्वयं एक चर्चा के दौरान कहा था – 'यह मेरी पत्नी ही नहीं पथ प्रदर्शिका भी है, आज जो कुछ भी मेरा निर्माण हुआ है, वह इसकी सेवा और त्याग की पृष्ठभूमि पर आधारित है, इसलिए मैं जीवन भर इसका ऋणी हूं।'

डॉ0 श्रीमाली ने शास्त्र वचन उद्धृत करते हुए बताया, कि पत्नी की चार अवस्थायें होती हैं– भोजन के समय उसका स्वरूप 'मां' के समान होता है, जिस प्रकार से मां अपने पुत्र को हठ करके भोजन कराती है; आराम के क्षणों में वह 'दासी' स्वरूपा होती है, जिस प्रकार से भृत्य पूरा-पूरा ख्याल रखता है, कि स्वामी को कोई असुविधा न हो, उसी प्रकार से सुलक्षणा पत्नी आराम के क्षणों में दासीवत् होती है; शयन के क्षणों में वह 'प्रेमिका' होती है और मुसीबत के क्षणों में 'सच्चे साथी' के समान होती है। शास्त्र वचन

के बाद डॉ0 श्रीमाली ने बताया, कि 'इसने इन चारों ही रूपों में मेरी सेवा की है।'

– और यह बात सही भी है, मैं जितने भी दिन गुरु जी के साथ रहा, मैंने देखा, कि वास्तव में माताजी विविध रूपा हैं, गुरु जी के प्रत्येक क्षण का ध्यान रखना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है, उनका अपना स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं है, उन्होंने अपना सब कुछ डॉ0 श्रीमाली में ही लीन कर दिया है, एक प्रकार से वे पतिमय हो गई हैं।

जहां तक त्याग और सेवा की बात है, यह महिला अन्यतम है। शादी करने के कुछ ही समय बाद, जबकि वह नववधू थीं, आंखों में लाज और अधरों में मधुरिमा थी, हाथों में मेंहदी और मन में पति के साथ रहने की ललक थी, ऐसे दिन इस महिला ने पति उन्नति की बलिवेदी पर न्यौछावर कर दिये, अपनी सारी खुशियां लम्बी प्रतीक्षा की झोली में डाल दीं और जीवन के कीमती वर्ष उदासी और कठिनाइयों को दान कर दिये।

डॉ0 श्रीमाली ने एक बार उन क्षणों को याद करते हुए कहा था – 'संन्यासवत् जीवन जीने के लिए मुझे कहते हुए झिझक हो रही थी, पर जब इस महिला को ज्ञात हुआ, तो इसने सहर्ष स्वीकृति दे दी, स्वीकृति ही नहीं दी, साथ ही कहा भी – ''जीवन बिता देना अपने आप में कोई विशिष्टता नहीं, विशिष्टता तो इस बात में है, कि जीवन इस प्रकार से जिया जाय, कि वह इतिहास बन जाय, जीवन में कुछ ऐसे कार्य हों, कि जिससे मानव जाति का सही अर्थों में कल्याण हो सके, मृत्यु ऐसी हो, कि लाखों-करोड़ों की आंखें छलछला जायें'' . . . और उस समय कहे हुए इसके ये शब्द आज भी मेरे कानों में गूंजते हैं।'

इस निर्णय के बाद माताजी ने केवल वियोग-पीड़ा ही नहीं, अपितु जरूरत से ज्यादा कष्ट एवं परेशानी भोगी है . . . श्वसुर का स्वभाव अत्यन्त उग्र था और क्रोधावेश में तो वे पूरे दुर्वासा बन जाते थे, परन्तु उनके क्रोध के वेग को भी शान्ति के साथ सहन किया और इसके साथ ही परेशानियों, समस्याओं एवं कष्टों का लम्बा सिलसिला – पर मुंह से कभी उफ् नहीं

की। सास-श्वसुर के साथ गांव में रहने के कारण उनकी सेवा ही जीवन का धर्म बना लिया था, कठोर ग्राम्य जीवन, श्वसुर की क्रोधातिरेकता और लम्बे वियोग ने शरीर को तोड़ दिया; यद्यपि ये बाधायें मन को नहीं तोड़ सकीं, पर शरीर को कमजोर और शिथिल बना दिया। जंगल से गायों के लिए घास का गट्ठर सिर पर उठा कर लाना, जलाने के लिए लकड़ियां ढोना, दूर-दूर स्थान से पानी लाना, चक्की चलाना और घर के छोटे से बड़े सभी कार्य को अपने हाथों ही करना, भोजन पकाना आदि। प्रातः चार बजे से रात के ग्यारह बजे तक निरन्तर शारीरिक श्रम ने शरीर को कमजोर कर दिया, परन्तु फिर भी . . . इतना होने पर भी मुंह से उफ् नहीं की, हमेशा चेहरे पर मुस्कुराहट बनी रहती, आंखों में सुखद स्वप्न तैरता रहता . . . 'एक दिन 'वे' अवश्य आयेंगे और मेरे जीवन की खुशियां लौट आयेंगी'।

उन दिनों को स्मरण कर माताजी आज भी विचलित हो जाती हैं और उनकी आंखें आज भी भीग जाती हैं।

पर उनके मन में किसी के प्रति कोई कटुता नहीं, पता नहीं इस विदुषी महिला ने कितना हलाहल अपने कंठ से नीचे उतारा है पर फिर भी इसकी जीभ से अमृत बरसता है, जो सभी को अपनी मधुरता से आप्लावित करता रहता है। हम दोनों – मैं और मेरी पत्नी – ज़ब तक डॉ0 श्रीमाली के सान्निध्य में रहे, पूज्य माताजी का बराबर स्नेह और आशीर्वाद मिलता रहा, कभी हमारे चेहरे पर जरा भी शिकन देखतीं, तो उदास हो जातीं, खोद-खोद कर पूछतीं, अपनी सौगन्ध दिलातीं और जब तक आश्वस्त न हो जातीं, हमें भुलाती नहीं; हमें ही क्यों, उनके घर जो भी आता, सभी के साथ ऐसा ही मातृवत् व्यवहार।

अंग्रेजी में कहावत है, – "मां संस्कारित होती है, तो पूरा घर और आने वाली पीढ़ियां भी संस्कारित हो जाती हैं" और मैंने यह कहावत पूज्य गुरुदेव के घर में देखी है . . . माताजी के व्यक्तित्व का, उनकी सरलता का, उनकी मधुरता का, उनकी पवित्रता और धार्मिकता का प्रभाव पूरे घर पर है, घर के अणु-अणु पर है।

पूज्यनीया माता जी सुबह बहुत जल्दी उठ जाती हैं, नित्य क्रिया से निवृत्त हो पूजा घर में चली जाती हैं, इसके बाद से रात्रि को साढ़े ग्यारह बजे तक वे दो ही कार्यों में ज्यादातर व्यस्त रहती हैं– पति सेवा, अतिथियों की सेवा या ईश्वर चिंतन, पूजा–पाठ, धार्मिक चर्चा आदि – और मैंने देखा है, कि घर में बारहों महीने कुछ न कुछ धार्मिक कार्य चलते ही रहते हैं। न मालूम कितने ही अनाथ बच्चे माता जी की सहायता से पलते होंगे, कितने ही बच्चों की फीस माता जी की तरफ से जमा होती होगी, कितने ही रोगियों को फल, दूध आदि माता जी की तरफ से पहुंचता होगा और इतना सब कुछ करने के बाद भी जब कोई प्रसंग छिड़ता है, तो एक ही वाक्य में उत्तर मिलता है – 'सब राम जी करते हैं, मैं कौन होती हूं करने वाली'। वस्तुतः माता जी मातृ स्वरूपा हैं . . . 'या देवी सर्वभूतेषु मातृ रूपेण संस्थिता'

मेरी और एमिस की डायरियों में पूज्यनीया माता जी से सम्बन्धित भी कई संस्मरण हैं, जिनसे उनके विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ता है, उनमें से कुछ संस्मरण देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूं –

✳ 'ज्योतिष परिषद' ने पूज्य गुरुदेव डॉ0 श्रीमाली को अभिनन्दन ग्रंथ भेंट करने का निश्चय किया और उसमें पंडित जी की जीवनी देने का भी विचार था, इसका भार पंडित जी के प्रिय शिष्य को सौंपा था, परन्तु वह समझता था, कि इसमें यदि दुष्कर और कठिन कार्य है, तो गुरु जी से जीवन ज्ञात कर लिपिबद्ध करना। वह पूज्य श्रीमाली जी के सम्पर्क में रहा था और उनके स्वभाव से परिचित था।

वह आकर गुरुदेव के घर भी ठहरा, तीन–चार दिन बीत गये, एक दिन हिम्मत करके उसने निवेदन किया, तो अनुकूल उत्तर नहीं मिला . . . बोले – 'क्या होगा मेरी जीवनी लिखकर ? इस विशाल सागर में छोटे से बुलबुले की बिसात ही क्या है ? और फिर जीवनी लिखना-लिखाना बड़े लोगों का कार्य है, मैं तो एक छोटा सा, अदना सा आदमी हूं, जीवनी छप जायेगी तो और ज्यादा लोग जानेंगे, और ज्यादा लोग आयेंगे, और ज्यादा भीड़ होगी और ज्यादा व्यस्तता होगी . . . इससे स्वाध्याय में, प्रभु भजन में बाधा होगी।

व्यर्थ है रे, जीवनी लिखना' — और अपने दूसरे कार्यों में लग गये।

गुरुजी के सामने दूसरी बार जाकर निवेदन करने की हिम्मत उसमें थी नहीं। जो जिम्मेदारी ज्योतिष परिषद ने उस पर डाली थी, वह पूरी नहीं कर सकेगा, स्मरण कर उसकी आँखों में आंसू छलछला आये। उस समय मैं और एमिस भी पास ही बैठे थे, हमने निर्णय किया, कि अब कोई चारा नहीं है, माताजी से ही निवेदन करें तो कोई रास्ता निकल सकता है।

उसी दिन शाम को हमने भोजन करने से इन्कार कर दिया, शाम को भोजन पूरे घर के प्राणी एक साथ बैठकर करते हैं, भोजन की टेबल पर जब हमें नहीं देखा, तो माताजी ढूंढती-ढूंढती हमारे कमरे में आईं, हम तीनों कृत्रिम उदासी लिए बैठे थे। उदास चेहरा देखकर माता जी का हृदय परेशान हो गया — बच्चों को क्या तकलीफ हो गई? ये उदास क्यों हैं?'

पास आकर पूछा — 'क्या बात है? आज तीनों ने भूख हड़ताल करने का विचार किया है क्या?'

हम सब आदर देने के लिए उठ खड़े हुए, पर बोले कुछ नहीं।

माताजी मधुसूदन के पास गईं— क्या हो गया रे तुझे? चलकर भोजन क्यों नहीं कर लेता?

मधुसूदन कुछ नहीं बोला, तो मेरी ओर मुखातिब होकर बोलीं — 'क्या है रे पोलर! मुझे भूखा रखने का इरादा है क्या?'

'आज हम तीनों में से कोई भोजन नहीं करेगा' — एमिस ने स्थिति संभाली।

'पर क्यों?' — परेशान सी माताजी ने पूछा।

मैंने कहा — 'आप बैठिये, हम सब कुछ बताये देते हैं।'

माताजी बैठ गईं, मधुसूदन ने अपने आने का कारण, गुरुजी से पूछने पर उनकी तरफ से मना कर देना आदि पूरी बात बता दी और यह भी कह दिया, कि यह कार्य आपके सहयोग से ही हो सकता है, यदि आप यह कार्य सम्पन्न करवा देने का वायदा करें, तो हम भोजन करेंगे अन्यथा आज से

भूख हड़ताल ही समझें।

माताजी दो मिनट तक सोचती रहीं, फिर उठकर हंस पड़ी – 'तो तुम सबने प्लानिंग कर लिया है, मुझे हथियार बनाने का।'

हममें से कोई नहीं बोला–

– 'अच्छा बाबा! चलकर भोजन तो कर लो, मैं गुरु जी से कहकर तुम्हारा कार्य करवा दूंगी . . . बस।'

हम लोगों की विजय हो चुकी थी, गुरुजी भोजन के लिए तैयार बैठे इंतजार कर रहे थे माताजी का और हम सब का . . . बोले – 'क्या बात है? क्या मंत्रणा कर आये हो तुम सब' . . . फिर पत्नी को सम्बोधित कर बोले – 'इस मधुसूदन की बातों में मत आ जाना तू।'

– 'ये तो भोजन ही नहीं कर रहे थे, बड़ी मुश्किल से मना कर लाई हूं . . . मैंने तो वायदा कर लिया है इनसे' . . .

– 'किस बात का?'

– 'आपको भोजन के बाद आराम करते समय का एक घंटा इनको दान देना ही पड़ेगा और उस एक घंटे में ये छोकरे जो भी पूछेंगे, आपको उत्तर देना ही पड़ेगा।'

गुरुजी दो क्षण तो बोले नहीं, फिर कहा – 'अच्छा भाई' . . .

और पूरा माहौल हंसी, आनन्द और उमंग के वातावरण में भीग गया।

✳ एक बार एमिस को ज्वर चढ़ आया, डॉक्टर आया और देख गया, बोला – 'कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं है', पर माताजी को चैन कहां था, सिराहने बैठी रहीं, यद्यपि घर के अन्य कार्य किये, पर बेमन; प्राण एमिस में अटके हुए थे, कभी चाय बनाकर लातीं, तो कभी दवा पिलातीं।

एमिस कहती – 'माताजी! केवल बुखार है, इसमें इतनी चिन्ता करने की क्या जरूरत है?'

पर मां का हृदय . . . घर में सेवक होते हुए भी उसकी सेवा सुश्रुषा

का भार स्वयं उठाये चलतीं, रात को हम सो गये, पर उनकी आंखों में नींद कहां ? जब तक वह ठीक न हो गई और सबके साथ टेबल पर भोजन करने न बैठ गई, तब तक वे बराबर उसके कार्य में लगी रहीं।

एमिस आज भी कहती है – 'मां! . . . मां का स्वरूप तो जोधपुर में देखा है, मेरी सच्ची मां तो जोधपुर में हैं' . . . और आज भी स्मरण कर उसकी आंखों की कोरें भींग जाती हैं।

✳ एक दिन बातचीत के प्रसंग में गुरुजी ने कहा – 'प्राणमय कोष को जाग्रत करने के लिए अन्नमय कोष का कम से कम सहारा लेना चाहिए, अत: भोजन कम करना चाहिए, ज्यादा भोजन से आलस्य और अकर्मण्यता आती है, भोजन तो केवल शरीर को चलायमान रखने का साधन मात्र है, भोजन में स्वाद लेना लक्ष्य की तरफ से हटना है।'

मैंने दूसरे दिन से भोजन की मात्रा कम कर दी, उस दिन तो चल गया, पर दूसरे ही दिन मां ताड़ गई, बोलीं – 'क्या बात है? भोजन में कमी कैसे हो रही है?'

एमिस बोली – 'ये गुरुजी के उपदेशों पर चल रहे हैं, गुरुजी ने कहा, भोजन की मात्रा जितनी कम हो, उतना ही ठीक रहेगा।'

थोड़ी देर बाद जब गुरुजी उधर से निकले, मां जी बोलीं – 'यह आप बच्चों को उल्टा-सीधा क्या पढ़ाने लग गये हैं, मार डालेंगे क्या इन्हें' . . . और कहते-कहते दो रोटियां और मेरी थाली में डाल दीं और जब तक मैंने खा न ली, तब तक हटी नहीं, बोलीं – 'ये तो आधे साधु हैं और आधे गृहस्थ . . . पर तुम तो पूरे गृहस्थ हो . . . गृहस्थों की तो उपासना ही खाना और ठूंस-ठूंस कर खाना ही है' . . . कहते-कहते खिलखिलाकर हंस पड़ीं – कितनी मोहक, मधुर, शांत और पवित्र हंसी है मां की।

✳ माताजी अपने नित्य के कार्यक्रम में लगी हुई थीं, घर का सारा कार्य उसी तरीके से चल रहा था, जिस प्रकार नित्य चलता है, तीन बजे तक वे कार्य से निवृत्त हुईं। नित्य नियमानुसार चार बजे चाय बनती

है, चाय बनी, पर माताजी कमरे में सो रही थीं; दिन को . . . और माताजी का शयन! . . . कुछ अटपटा सा लगा, एमिस ने देखा, तो बुखार था, सिर भट्ठी की तरह जल रहा था, आंखें लाल हो गई थीं, थर्मामीटर से देखा, तो बुखार एक सौ तीन से ऊपर था।

— 'कब से बुखार है?'

— 'कल रात से ही है' . . . संक्षिप्त उत्तर मिला।

— 'तो आपने बताया नहीं और दिन को भी कार्य करती रहीं आप?'

— 'बताती तो तुम बच्चे लोग चिन्ता करते, मेरी वजह से तुम्हें कष्ट, परेशानी या चिन्ता हो, क्या ऐसा उचित होता?'

बुखार होने पर भी उठीं, हम लोगों के साथ चाय लीं। दर्द को मन ही मन छुपाये रखना और सहन करना कोई माताजी से सीखे।

*

महीने में लगभग बीस दिनों तक तो उनके व्रत, उपवास आदि चलते रहते हैं, एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या, प्रदोष आदि कई; व्रत के दिन कुछ भी नहीं खातीं . . . निराहार रहती हैं।

एक दिन मैंने पूछा — 'माताजी! इतने अधिक व्रत रखने से क्या फायदा, भूखे रहने से क्या लाभ?'

बोलीं — 'इसीलिए कि तुम्हें भरपेट भोजन मिलता रहे, आनन्द मंगल में क्षण व्यतीत हो सकें।'

छोटी सी बात, पर कितनी गहरी, कितनी सारगर्भित।

*

एक दिन घर के हम सब सदस्यों ने मंडोर उद्यान जाने का निश्चय किया, हम देख रहे थे, कि पिछले कुछ दिनों से कार्य का बोझ कुछ अधिक बढ़ जाने के कारण गुरुदेव थक से गये थे और हम चाहते थे कि उद्यान में जायें, चार-छः घंटे शांति से व्यतीत करें, पर उन्हें कहे कौन और कहने से क्या वे मान जायेंगे? जिस प्रकार से आने-जाने वालों का तांता लगा रहता है, उस हिसाब से तो उनका पांच मिनट के लिए भी

निकलना कठिन दिखाई देता है . . . थक-हार कर माताजी के चरणों में गये और सारी वस्तुस्थिति से अवगत कराया।

हमने कहा – 'अगर आप हमारी तरफ हो जायेंगी, तो हमें विश्वास है, कि गुरुजी अवश्य चले चलेंगे।'

माताजी की आज्ञा से दूसरे दिन के सारे कार्यक्रम स्थगित कर दिये, जो मिलने आये थे और दूसरे दिन का समय मांग रहे थे, उन्हें एक दिन और आगे का समय दे दिया गया।

उस दिन सुबह उठकर ही हमने गुपचुप तैयारी कर दी, नित्य नियमानुसार लगभग नौ बजे गुरुजी आगन्तुकों से मिलने कक्ष में आ जाते हैं . . .

गुरुजी ने पूछा – 'क्या बात है? आज कौन-कौन मिलने वाले हैं।'

– 'कोई नहीं।'

– 'कोई नहीं! ऐसा कैसे हो सकता है?' उनके स्वर में आश्चर्य था . . . उन्होंने मुझे बुलाया, मैं माताजी को साथ लेकर कमरे में गया . . . गुरुजी ने पूछा – 'क्या बात है, पोलर!'

'आज के सारे कार्यक्रम स्थगित कर दिये हैं?' – मैंने कुछ हिचकिचाते हुए उत्तर दिया।

– 'क्यों? किसलिए? किसकी आज्ञा से?' . . . कुछ क्रोधित से हो गये थे वे।

– 'मैंने कह दिया था इनको, आप थक जाते हैं, काम के बोझ से . . . इन छोकरों ने हठ करके मंडोर का प्रोग्राम बनाया है आज और आपको भी चलना है।'

गुरुजी माता जी की तरफ और हमारी तरफ देखते रहे, उनसे आंखें मिलाने की हिम्मत नहीं हो रही थी . . . दो मिनट तो तनाव में बीते . . . और फिर कमरे में गुरुजी की हंसी भर गई . . . हंसी के बीच बोले– 'अरी! तू भी बहकावे में आ गई इन छोकरों के, यह सारी प्लानिंग तुम्हें लेकर की गई दिखती है, अच्छा भाई! – गुरुजी उठ खड़े हुए तनाव मिटा और हमारी

सांस में सांस आई। उस दिन मंडोर के उद्यान में गुरुजी ने जो कुछ भी सिद्धियां दिखाईं, वे हमारे जीवन की यादगार हैं।

✳

एक दिन दरवाज़े पर कोई फकीर खड़ा था, फकीर और उसकी पत्नी . . . फटेहाल . . . चीख-चीख कर भीख मांग रहे थे।

मैं दरवाजे पर खड़ा था, संस्कारवश उन्हें दुत्कार दिया . . . 'शर्म नहीं आती भीख मांगते . . . हट्टे-कट्टे हो, कुछ मेहनत-मजदूरी करो।'

तभी माताजी उधर से निकलीं, बोलीं – 'क्या बात है पोरवर! क्यों फटकार रहा है इनको।'

– 'मां जी' . . .

'देखता नहीं कितनी सर्दी है और इन फटे कपड़ों में' . . . अन्दर से लाकर अपनी एक साड़ी उसको देते हुए बोलीं – 'ले बिटिया! पहन ले, लज्जा ढकने का वस्त्र तो सही सलामत होना ही चाहिए।'

और सेवक को बुलाकर भोजन दिया, तब वहां से हटीं . . . उनकी गरीबी की विवशता देखकर मां जी की आंखें डबडबा आईं थीं . . . कितना दर्द है मां के हृदय में, यह मैंने उस दिन जाना।

सैकड़ों संस्मरण हैं, सैकड़ों घटनायें हैं, आज भी इन पंक्तियों को लिखते समय मां का स्मरण कर मेरी आंखें झर रही हैं, उनकी कृपा को याद कर पुलकित हो रहा हूं, उनके स्नेह को स्मरणकर खो सा गया हूं

काश! मैं ऐसी मां की कोख से जन्म लेता।

गुरु-शिष्य प्रसंग
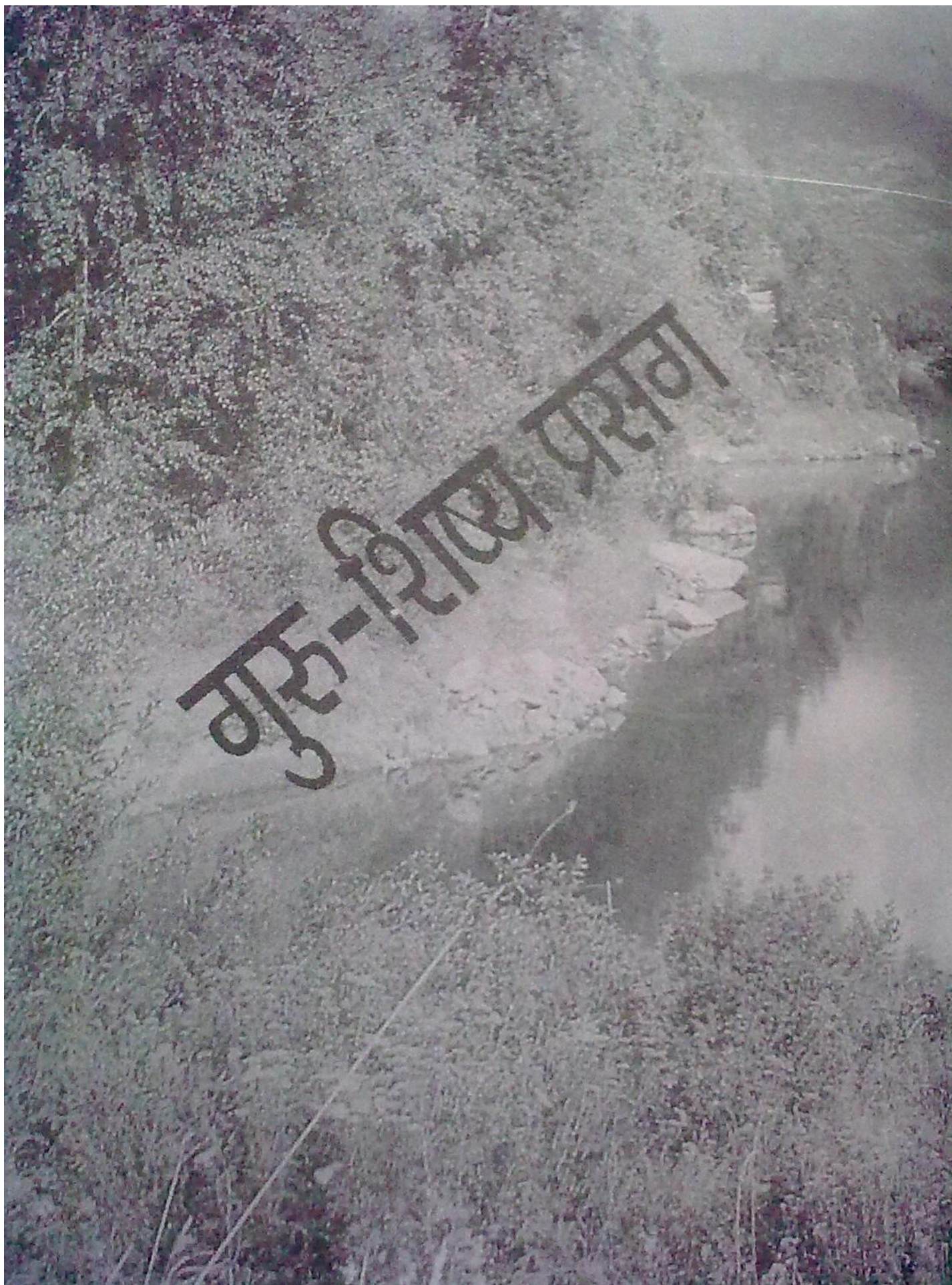
गुरु और शिष्य का सम्बन्ध तो
चिर नूतन है, सर्वथा पुरातन होते हुए भी।
जब से इस पृथ्वी की रचना हुई, तभी से
गुरु और शिष्य परम्परा चली आ रही है और
उस समय से गुरु अपने शिष्य को संवारता चला आ रहा है।
गुरु को कभी किसी ने कुम्हार कहा,
तो किसी ने प्रेमी कहा,
किसी ने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र कहा।
मेरी निगाह में तो गुरु एक मूर्तिकार है,
क्योंकि वह नित नयी नयी मूर्तियों को गढ़ता रहता है।
लेकिन मूर्तिकार तभी किसी पत्थर को
अपने इच्छानुसार रूप में ढाल सकेगा,
जब उसे पत्थर का सहयोग मिले।
शिष्य भी तो अनगढ़ पत्थर की तरह ही होता है,
लेकिन इसमें एक गुण ऐसा होना आवश्यक है,
जिससे वह सुन्दर रूप धारण कर सके
और वह गुण है — 'विश्वास'।
शिष्य को विश्वास होना चाहिए, कि मेरे गुरु निश्चय ही
ब्रह्मत्व की छेनी-हथौड़े से प्रहार कर रहे हैं,
लेकिन एक समय ऐसा आयेगा,
जब वे स्वयं अपने द्वारा तराशी गयी
इस मूर्ति को देख कर गौरवान्वित हो उठेंगे।

समस्त साधना क्रम की धुरी ही गुरु-शिष्य सम्बन्ध है, इसका मूल कारण यह है, कि मंत्र अपने आपमें प्रबल शक्ति सम्पन्न एवं प्रभावपूर्ण हैं, पर इसका रहस्य इसके उच्चारण में छिपा हुआ है, मंत्र को सामान्य तरीके से पढ़ लेना या उच्चारण कर लेना कोई मायने नहीं रखता, क्योंकि बिना आरोह-अवरोह का ज्ञान किये मंत्र का प्रभाव पैदा हो ही नहीं सकता। ऐसी स्थिति में पुस्तकों में प्रकाशित मंत्र मात्र बोध करा सकते हैं, उसका उच्चारण किस प्रकार से किया जाय, जिससे उसके द्वारा वांछित सिद्धि प्राप्त की जाय, गुरु ही शिष्य को सामने बिठाकर मंत्र उच्चारण कर समझा सकता है, उसके आरोह-अवरोह का ज्ञान करा सकता है। अतः मंत्र के उच्चारण का ज्ञान गुरु से ही संभव है, अन्य किसी साधन से नहीं।

गुरु और शिष्य के सम्बन्ध अत्यन्त सूक्ष्म धरातल पर स्थित होते हैं, अतः इसमें जरूरत से ज्यादा सावधानी एवं सतर्कता की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में गुरु-शिष्य परम्परा की जड़ें अत्यन्त गहरी और सुदूर तक गई हुई हैं, अतः इसके बारे में कुछ विचार करना आवश्यक सा अनुभव

कर रहा हूं–

'गु' का अर्थ है, 'अन्धकार' और 'रु' का अर्थ है उस अन्धकार को नष्ट करने वाला प्रकाश। इस प्रकार 'गुरु' शब्द का अर्थ 'शिष्य में व्याप्त अन्धकार को दूर कर ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाला' होता है। इसीलिए यह कहा जाता है, कि जीवन उसी का धन्य माना जाता है, जिसने जीवन में सच्चा गुरु प्राप्त कर लिया हो।

समय-समय पर डॉ0 श्रीमाली से इस सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त हुई, उसे मैं प्रश्नोत्तर के रूप में स्पष्ट कर रहा हूं।

प्रश्न– गुरु . . . सच्चा गुरु कैसा होता है?

उत्तर– शारदा तिलक में इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से बताया गया है–

मातृतः पितृतः शुद्धः शुद्धभावो जितेन्द्रियः।
सर्वागमानां सारज्ञः सर्वशास्त्रार्थ तत्ववित्।।
परोपकार निरतो जप पूजा च तत्परः।
अमोघ वचनः शान्तो वेद-वेदार्थ पारगः।।
योग मार्गानुसन्धायी देवता हृदयंगमः।
इत्यादि गुण सम्पन्नो गुरु रागश्च संमतः।।

अर्थात् 'श्रेष्ठ गुरु वही कहा जा सकता है, जो मातृकुल एवं पितृकुल से शुद्ध एवं पवित्र होता है तथा नित्य ही उसके चित्त में समन्वय-भाव का सागर लहराता हो, वह इन्द्रियों पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त करने वाला, सभी अगम ग्रंथों का ज्ञाता एवं समस्त शास्त्रों का जानने वाला हो। सफल गुरु वही कहा जाता है, जो हर क्षण दूसरों की भलाई में निरत रहे तथा जप-पूजा-ध्यान में दक्ष हो, उसके वचन अमोघ एवं सिद्ध हों, शांत प्रकृति हो तथा वेदों के मर्म को जानने वाला हो। योग मार्ग का अनुसन्धान करने वाला, देवताओं का प्रिय तथा आगम-निगम में निष्णात हो – ऐसा व्यक्ति ही सही अर्थों में गुरु कहलाने का अधिकारी होता है।'

प्रश्न– गुरु जी! क्या भारतीय शास्त्रों में गुरु की मर्यादायें स्पष्ट की गई हैं?

उत्तर– हां! गुरु शब्द सुनने में ही मधुर लगता है, पर इसके पीछे जो जिम्मेदारियां हैं, वे कांटों पर चलने के बराबर हैं। गुरु शास्त्रों का मनन करते हैं, अध्ययन कर निष्कर्ष निकालते हैं, तपस्या एवं साधना के द्वारा तप-पूंजी एकत्र करते हैं तथा अपने शिष्यों में बांट देते हैं और इस प्रकार मन, बुद्धि, मस्तिष्क एवं विचारों से शिष्यों को सुदृढ़ कर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। गुरु की तो पूंजी ही शिष्य होते हैं, अतः शिष्य के संस्कारों का परिमार्जन करते हैं और उसके अज्ञानान्धकार को दूर कर उसके जीवन में प्रकाश फैलाते हैं, कठिनाइयों, कष्टों एवं बाधाओं से जूझना सिखाते हैं, अवगुणों को दूर कर गुणों का विकास करते हैं, लघुता से महानता की ओर अग्रसर करते हैं तथा शिष्टाचार एवं मर्यादा के गुणों का विकास करते हैं।

इसीलिए तो मनु ने 'गुरु' को ही वास्तविक पिता बताया है तथा उपनिषदकारों ने गुरु को परब्रह्म की संज्ञा दी है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

जो गुरु हमारे पूरे जीवन को संवारते हैं, उन्नति के पथ पर अग्रसर करते हैं, जीवन की विपरीत धारा में भी कुशलता पूर्वक तैरना सिखाते हैं तथा जिन्दगी की रपटीली राहों पर संभलना सिखाते हैं, दुर्गम घाटियों को कुशलता पूर्वक पार करना सिखाते हैं तथा उबड़-खाबड़ पगडण्डियों पर चलना सिखाते हैं, ऐसे गुरु की चरण-वंदना करें, तो क्या आश्चर्य है? उनकी चरण रज तो पवित्रतम है, उनके ऋणों से तो हम इतने दब जाते हैं, कि हम पूरे जीवन भर प्रयास करने पर भी उनके ऋणों से मुक्त नहीं हो पाते।

प्रश्न– इस सम्बन्ध में शास्त्र वचन क्या है?

उत्तर– हमारे शास्त्रों ने तो पोलर! गुरु को उच्चतम सम्मान प्रदान किया है, 'महर्षि वेद व्यास' ने गुरु को माता-पिता से भी उच्च स्थान प्रदान किया है।

– 'ब्रह्मविद्या उपनिषद' में बताया गया है – 'कि सच्चा शिष्य वही है जो गुरु के आदेश का बिना हिचकिचाहट के पालन करे।'

'मनु' ने कहा है – 'शिष्य की स्वयं की कोई इच्छा नहीं होती, उसे तो वही करना चाहिए, जो गुरु को प्रिय हो, गुरु की संतुष्टि ही शिष्य के परिश्रम की सफलता है।'

'अद्वय तारकोपनिषद' में स्पष्ट कहा है – 'गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही गति हैं, गुरु ही विद्या और पराविद्या हैं, गुरु ही जीवन की सर्वोच्च साधना एवं पराकाष्ठा हैं, गुरु ही धर्म हैं, वही जीवन का प्राण-अणु हैं।'

गुरु को प्राप्त करने का तात्पर्य या उसे वरण करने का तात्पर्य अपनी आत्मा को गुरु की महान आत्मा से जोड़ देना है, 'मुण्डकोपनिषद' में कहा है–

तस्मं स विद्वानुप सन्नाय सम्यक् प्रशान्त चित्ताय शमन्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रा वाच तां तत्वतो ब्रह्मविद्याम्।।

'अद्वय तारकोपनिषद' में बताया है – 'गुरु ही जीवन की परम गति हैं, गुरु ही वरण करने योग्य हैं, गुरु ही जीवन का सर्वोच्च धन हैं।'

'ब्रह्मोपनिषद' में स्पष्ट कहा है – 'गुरु पद का अधिकारी वही हो सकते हैं, जो ईश्वर भंक्त हों, जीवन में सत्यपथ के हामी हों; पर देशकाल, पात्र के अनुसार अपने आपको ढालने की क्षमता रखते हों, योगात्मा, योगनिष्ठ एवं परमात्मा में लीन रहने वाले हों।'

'ऋग्वेद' में कहा है – 'उठो! जागो!! और सद्‌गुरुओं द्वारा ज्ञान का संचय करो' –

उत्तिष्ठित:! जाग्रत:!! प्रत्यवरान निरोधक।

साथ ही यह भी कहा गया है – 'शिष्य को विद्या की पूर्णता पुस्तकों के माध्यम से नहीं, गुरुमुख से एवं गुरु-संग से ही हो सकती है।'

गुरोपदेशयोज्ञेयं न च शास्त्रार्थ कोटिभि:।

'श्रुति उपनिषद' में बताया गया है — "गुरु को चाहिए कि वह शिष्य की परीक्षा ले, कठोर परीक्षा ले और बार-बार परीक्षा ले, स्वर्ण को जितना ही ज्यादा तपाया जायेगा, वह उतना ही ज्यादा उज्ज्वल होगा।"

श्रीमद्भागवत् में कहा है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि-गच्छेत्।
समित् प्राणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

अर्थात् "गुरु के पास जाकर उनकी सेवा करके, उनके मुंह से ही ज्ञान प्राप्त करें।" आत्म ज्ञान के लिए भी गुरु का सहारा हमारे शास्त्रों में आवश्यक माना गया है — "बिना गुरु कृपा के न तो विषय-वासनाओं का त्याग हो सकता है, न तत्त्व दर्शन हो सकता है और न ही सहजावस्था प्राप्त की जा सकती है।"

दुर्लभो विषयो त्यागो दुर्लभो तत्त्व दर्शनं।
दुर्लभो सहजावस्था सद्गुरौ करुणा बिना॥

गुरु का सहयोग प्राप्त होते ही आधी बाधायें तो तुरन्त दूर हो जाती हैं। मंत्र, गुरु और देवता— ये तीनों ही एक शब्द के तीन अर्थ हैं और वह एक शब्द "गुरु" है—

यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थ वाचकाः।
तथा मंत्रं देवता च गुरुश्चैकार्थ वाचकः॥

इस जीवन में तो सैकड़ों धर्म हैं, सैकड़ों मार्ग हैं, पर वही मार्ग श्रेयस्कर है, जो गुरु द्वारा सुझाया गया हो—

पंथानी बहवः प्रोक्ता मंत्र शास्त्र मनीषिभिः।
स्व गुरौ मर्तयाश्रित्य शुभंकार्यं न चान्यथा॥

और

अनेक कोटि मंत्राणि चित्त व्याकुल कारणम्।
मंत्र गुरौः कृपा प्राप्त मेकं स्यात् सर्वसिद्धिदम्॥

गुरु को किसकी उपमा दी जाय? किससे गुरु की तुलना की जाय? इसका उत्तर 'शंकराचार्य' ने अत्यन्त सुन्दर तरीके से कहा है—

दृष्टान्तो नैव दृष्टास्त्रिभुवन जठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुः,
स्पर्शश्चैतत्र कल्प्यः सनयातियदहो स्वर्णतामश्य सारम्।
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरुः स्वीपशिष्ये;
स्वीयं सभ्यं विधत्ते भवति निरुपसस्तेन व लौकिको पि।।

अर्थात् 'तीनों लोकों में ज्ञान देने वाले सद्गुरु को देने योग्य शिष्य के पास कुछ भी नहीं होता, गुरु की उपमा पारस से दें, तब भी व्यर्थ है, क्योंकि पारस लोहे को सोना ही बनाता है, लोहे को पारस बना देने की क्षमता उसमें नहीं है; पर गुरु की महिमा अद्भुत है, वह शिष्य को अपनाकर उसे अपने ही समान बना लेता है, इसलिए सद्गुरु की तुलना हो ही नहीं सकती।'

गुरु कृपा से ही भोग, ऐश्वर्य, सुख, सम्पत्ति, यश एवं स्वर्ग की सम्पदा भी प्राप्त की जा सकती है।

चिन्तामणि लोके सुखं सुरदुः स्वर्ग सम्पदम्।
प्रियच्छित गुरु प्रीतो वैकुण्ठ योगी दुर्लभम्।।

तंत्रों में तो स्पष्ट रूप से बताया गया है, कि बिना गुरु के और बिना गुरु कृपा के यदि पूजा, ध्यान अथवा मंत्र जप किया जाता है, तो वह पूर्णतः निष्फल होता है। 'काली विलास तंत्र' के अनुसार—

गुरु पूजा बिना देवि स्वेष्ट पूजां करोति यः।
मंत्रस्य तस्य तेजांसि हरतै भैरवः स्वयम्।।

'शिव पुराण' में कहा है — जैसा गुरु का आदेश हो, उसी प्रकार से रहना चाहिए। मन, वचन, कर्म से भी गुरु को क्रोधित होने का अवसर नहीं देना चाहिए, क्योंकि गुरु के क्रोधित होने से आयु, तप, लक्ष्मी तथा समस्त सत्कर्मों का नाश हो जाता है—

यथा गुरुस्तथैवेशो यथे वेशस्तथाः गुरुः।
पूजनीयो महाभक्त्या न भेदो विद्यते नमः।।
कर्मणा मनसा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत्।
तस्य क्रोधेन दह्यन्ते आयुः श्री ज्ञान सत् क्रिया।।

इसीलिए तो 'शिव पुराण' में शिव और गुरु में कोई भेद नहीं माना है, जो गुरु है, वही शिव है और जो शिव है, वही गुरु है।

यः गुरु स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरु स्मृतः।
तस्माद्धि श्री गुरोर्भक्ति भक्ति मुक्ति प्रदायिनीः।।

'कुलाणर्व तंत्र' में कहा है—

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुत्वावमानयेत्।
श्वानं योनिशतः गत्वा चण्डालत्वमवाप्नुयात्।।

छोटे से छोटा ज्ञान भी यदि गुरु देता है, तो वह समस्त सिद्धियों से बढ़कर होता है, ऐसे गुरु का जो अपमान करता है, वह सौ बार कुत्ते की योनि में जन्म लेता है।

न पादुकापरो मंत्रो न देवः श्री गुरोः परः।
न हि शक्तित् परा दीक्षा न पुण्य कुलपूजनात्।।

गुरु चरणों से बढ़कर कोई पूजा नहीं, श्री गुरु से बढ़कर कोई देवता नहीं है, इसीलिए गुरु की मूर्ति ही 'ध्यान', गुरु चरण सेवा ही 'पूजा', गुरु वाक्य ही 'मंत्र' और गुरु कृपा ही 'मोक्ष' माननी चाहिए।

तावदार्त्तिर्भय शोको लोभमोह भ्रमादयः।
यावन्नायाति शरणं श्री गुरुं भक्तवत्सलम्।।

इस जीवन में शिष्य को तभी तक भय रहता है या लोभ, मोह, शोकादि दुःख रहते हैं, जब तक उसे गुरु चरणों का सान्निध्य न मिले।

ब्रह्मा विष्णु महेशादिदेवतामुनियोगिनः।
कुर्वन्त्यनुग्रहं तुष्टा गुरौ तुष्टे न संशयः।।
तावत्तदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नो सौ यदा भवेत्।
गुरौ प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत्।।

गुरु ही जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश का रूप हैं, तब अलग-अलग देवताओं की पूजा की अपेक्षा एक 'गुरु की पूजा' ही शिष्य के समस्त दुःख एवं बन्धनों को काट देने के लिए पर्याप्त है, अतः शिष्य को चाहिए, कि वह गुरु की तब तक पूजा करता रहे, जब तक कि गुरु प्रसन्न न हो जायं। जब गुरु प्रसन्न हो जाते हैं, तब शिष्य की सारी आशंकायें निर्मूल हो जाती हैं तथा समस्त समस्याओं का समाधान हो जाता है।

गुरोर्हितं हि कर्त्तव्य मनोवाक्कायकर्मभिः।
अहिताचरणाद्देवि विष्ठायां जायते क्रिमिः।।

मन, वचन, कर्म से गुरु की सेवा होनी चाहिए; जो शिष्य किसी भी समय गुरु का अहित सोचता है, वह विष्ठा का कीड़ा बनकर नरक भोगता है। 'तंत्र सार' में स्पष्ट रूप से लिखा है–

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुत्राता गुरौ रुष्टे न कश्चनः।।

यही नहीं 'कबीर' ने तो चिल्ला-चिल्ला कर कहा है–

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय।।
सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराय।
सात समंद की मसि करूं, गुरु गुन लिखा न जाय।।

प्रश्न– जहां शास्त्रों ने गुरु के लक्षण बताये हैं, वहां शिष्य के बारे में भी तो कहा होगा?

उत्तर– हां! जहां योग्य गुरु के लिए इतनी मर्यादायें रखी हैं, वहीं योग्य शिष्य के लिए भी नियम स्पष्ट किये हैं, जिस कसौटी पर खरा उतरने पर ही वह सही अर्थों में शिष्य कहलाने का अधिकारी हो सकता है–

शिष्यः कुलीनः शुद्धात्मा पुरुषार्थ परायणः।
अधीतवेदः कुशलः दूरमुक्त मनोभवः।।
हितैषी प्राणिनां नित्य मास्तिकस्त्यक्त् नास्तिकः।
स्वधर्म निरतौ भक्त्या मातृ पितृ हितोद्यतः।।
वामनः कायवसुभिर्गुरु शुश्रुषणौ रतः।
त्यक्ताभिमानो गुरुषु जाति विद्या धनादिभिः।।
गुर्वाज्ञा पालनार्थं हि प्राण व्यय रतोद्यतः।
विहत्य च स्वकार्याणि गुरु कार्यरतः सदा।।
दासवन्निवसेद्यस्तु गुरो भक्त्या सदा शिशुः।
कुर्वन्नाज्ञा दिवा रातौ गुरु भक्ति परायणः।।
आज्ञाकारी गुरो शिष्यो मनोवाक्काय कर्मभिः।
यो भवेत्स तदा ग्राह्या तेतरः शुभकांक्षया।।
मंत्र पूजा रहस्यानि यो गोपयति सर्वदा।
त्रिकालं यो नमस्कुर्यादागमाचार तत्ववित्।।
स एव शिष्यः कर्त्तव्यो नेतरः स्वल्प जीवनः।
एतादृश गुणोपेतः शिष्यो भवति नापरः।।

शिष्य के लिए यह आवश्यक है, कि वह सदैव पुरुषार्थ, परिश्रम करने में तत्पर रहे, वेदों के बारे में जिज्ञासा एवं ज्ञान हो तथा उसे जो भी कार्य सौंपे, सुघड़ता, तत्परता, एवं चातुर्यता से उसे सम्पन्न करे। इसके साथ ही इस बात की शिष्य में नितांत आवश्यकता है, कि वह कामवासना से दूर हो तथा काम, क्रोध व लोभ जैसे दुर्गुणों को काफी दूर रखता हो।

शिष्य समस्त प्राणियों के हित को चाहने वाला, आत्महितचिन्तक, आस्तिक तथा प्रभु चरणों में पूर्ण श्रद्धा रखने वाला हो, जो अपने धर्म का कट्टरता से पालन करता हो तथा जिसकी माता-पिता के प्रति पूर्ण श्रद्धा एवं भक्ति हो। योग्य शिष्य की पहली और आखिरी कसौटी यह है, कि वह गुरु के प्रति घमंड प्रदर्शित न करे, जाति, कुल या धन की वजह से गुरु से अपने आप को सर्वोपरि न समझे तथा स्वयं के शरीर से, मन से तथा धन से गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित भाव हो, 'त्वदीयं वस्तु गोविन्दं, तुभ्यमेव समर्पये' की भावना उसके विचारों में हो।

शिष्य पद का वही अधिकारी हो सकता है, जो अपने गुरु की आज्ञा को प्राण समर्पित करके भी पूर्ण करे, परन्तु फिर भी मन में किसी प्रकार का दर्प या घमंड न आवे। अपने कार्यों का भी विहनन कर गुरु के कार्यों को पूर्ण करे। गुरु के पास नित्य दासवत् विनम्र रहकर सीखने को उद्यत रहे, जिसका व्यवहार शिशुवत् हो तथा दिन-रात गुरु हित में ही सचेष्ट रहे। मन, वाणी एवं कर्म से गुरु की आज्ञा का पालन करे तथा नित्य गुरु के चरणों में बैठकर, वे जो भी सिखावें, उसे श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर मनन करे।

शिष्य के लिए यह भी आवश्यक है, वह गुरु मुख से प्राप्त रहस्यों को गोपनीय रखे और बिना गुरु की आज्ञा के उसे उजागर न करे और न प्रकट ही करे . . . इस प्रकार के गुणों से संयुक्त ही वह सच्चा शिष्य पद पाने का अधिकारी होता है।

प्रश्न : यह तो ठीक है, पर शिष्यता की पात्रता स्पष्ट करने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर– शिष्य बनने का प्रारम्भिक बिंदु है– अविचलित भाव से सम्पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ गुरु की आज्ञा का पालन करना।

प्रश्न : यदि गुरु अनुचित आज्ञा दें तो?

उत्तर– यह विचार करने का अधिकार शिष्य का नहीं है, कि वह इस बात की छानबीन करे, कि गुरु ने जो आज्ञा दी है, वह उचित है या अनुचित।

उसका तो पहला और अंतिम कर्त्तव्य है 'गुरु जो भी आज्ञा दें, उसका पालन करे, तन, मन, धन से पालन करे, अपनी पूरी सामर्थ्य और शक्ति से पालन करे।'

प्रश्न : *यदि गुरु तिमंजली छत से कूद जाने को कहें या धधकती आग में कूद पड़ने को कहें तो?*

उत्तर– तो फिर इसमें सोचना कैसा? और विचारना कैसा? गुरु आज्ञा का पालन करने में हिचकिचाहट कैसी? – 'क्या तुम ऐसी आज्ञा मिलने पर छत से कूद सकोगे?'

– 'नहीं प्रभु! कुछ सोचूंगा।'

इसीलिए तो तुम अभी तक शिष्य बनने के अयोग्य हो। शिष्य की सीमा और शिष्य के ज्ञान से बढ़कर गुरु की सीमा और उसका ज्ञान होता है, अत: वह जो भी आज्ञा देगा – सोच-विचार कर, नाप-तोल कर देगा; गुरु ने ऐसी आज्ञा क्यों दी? इसका निर्णय शिष्य उसी समय इसलिए नहीं कर पाता, क्योंकि उसकी बुद्धि का विस्तार अभी उतना नहीं हो पाया है, जितना गुरु का है। गुरु सर्वज्ञ हैं, वे आगे की घटनाओं एवं रहस्यों को भी पहले से जानते हैं, उन आशंकाओं को दूर करने के लिए उस क्षण गुरु जो आज्ञा देंगे, वह अटपटी लग सकती है, पर होगी शिष्य के हित में ही।

प्रश्न : *गुरु किस प्रकार से जान सकते हैं, कि शिष्य योग्य हुआ या नहीं?*

उत्तर– गुरु के पास इसकी कई कसौटियां होती हैं, वह किसी भी कसौटी से कसकर शिष्य की पात्रता अनुभव कर सकते हैं, इसके लिए कई साधन अपनाने पड़ते हैं; कई बार जानबूझकर गुरु कोई ऐसी आज्ञा दे देते हैं जो शिष्य के लिए कठिन सी होती है, आज्ञा देकर गुरु मौन धारण कर लेते हैं और चुपचाप देखते रहते हैं, कि शिष्य क्या कर रहा है या किस प्रकार से आज्ञा पालन कर रहा है?
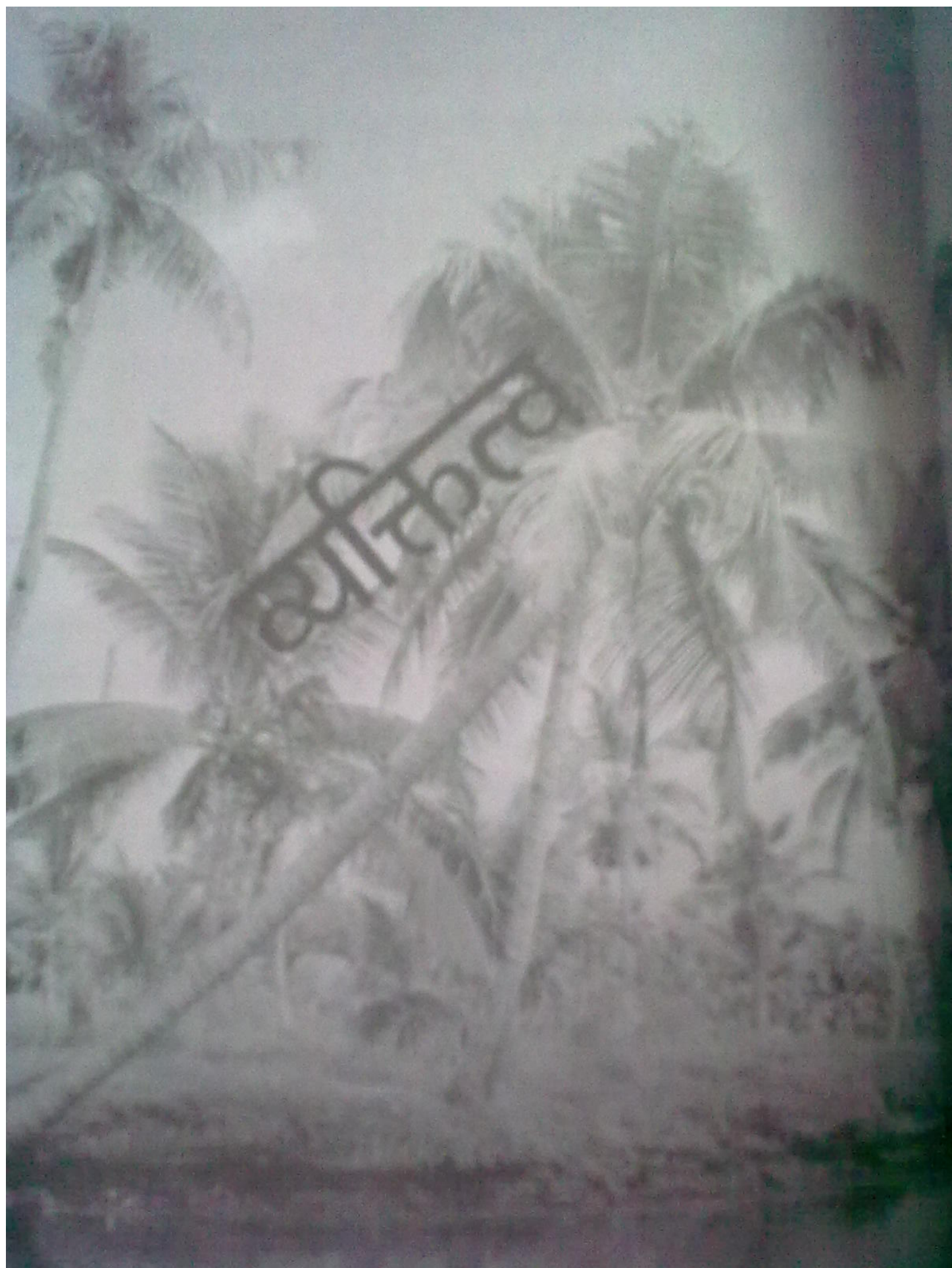
जीवन में ऐसे अनेक व्यक्ति मिलते हैं

जिनके व्यक्तित्व की छाप

हृदय पर पड़ती तो है,

लेकिन सभी अपना स्थायी प्रभाव छोड़ें

— ऐसा नहीं है।

पूरे जीवन काल में यदि कभी

कई जन्मों का भाग्योदय एक साथ होता है,

तब किसी के व्यक्तित्व की

अमिट छाप हृदयांकित होती है।

यह बात तो पूर्ण सत्य है,

कि अपना हृदय ही अपना गुरु

क्योंकि केवल उसे ही चुना जाता है,

जिसकी झलक मात्र से ही

हृदय-पुष्प सुरभित हो उठता है,

तब चन्द्रमा की शीतल किरणों के स्पर्श से

विकसित होने वाली कुमुदनी

सूर्य के ताप को भी चन्द्रवत शीतल समझ

मुखरित हो जाती है।
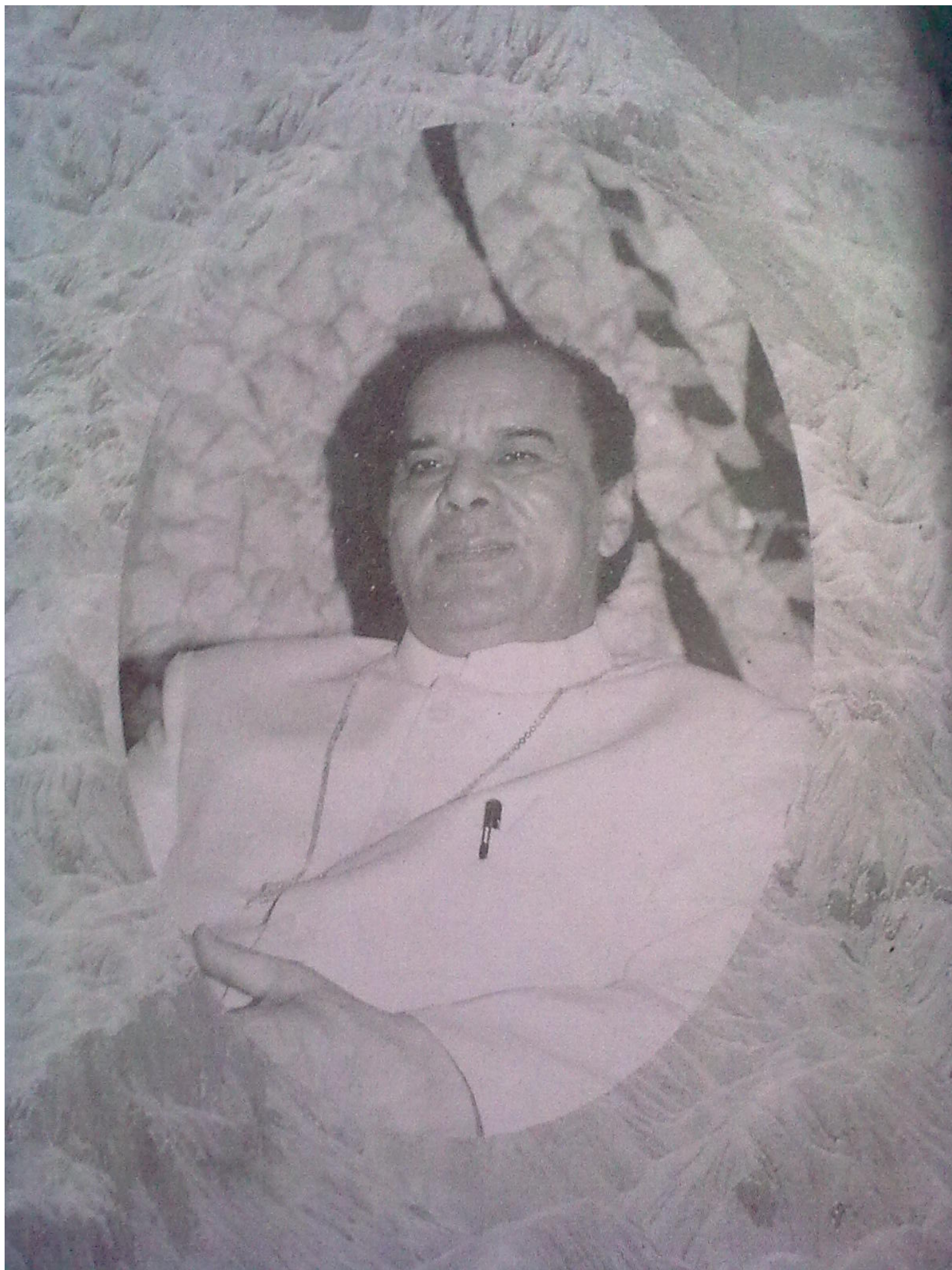
मैं अपने जीवन में बुद्धिवादी रहा हूं, न तो मैं किसी के कहने में आता हूं और न भावुकता में ही बहता हूं, अपितु जो कुछ भी देखता हूं, उसे तर्क की कसौटी पर कसता हूं और फिर खुली आंखों से उसे परख करके ही सही निर्णय लेने का प्रयत्न करता हूं।

मैंने जितना भी, जो कुछ भी डॉ0 श्रीमाली को जाना-परखा है, उसके आधार पर यह कह सकता हूं, कि डॉ0 श्रीमाली निस्संदेह एक महान् व्यक्तित्व हैं, जिनके पास स्वस्थ मस्तिष्क, गहन अनुभव, स्वयंसिद्ध साधना और विशाल हृदय है, ऊपर से देखने पर इनका व्यक्तित्व अत्यन्त साधारण सा लगता है। मेरा तो अनुभव है, कि यदि इनके साथ कुछ दिनों तक रहा जाय, तो ऊपर से कोई विशिष्टता नजर नहीं आयेगी, परन्तु यदि गहराई में जाएं, तभी इस व्यक्तित्व की विराटता के दर्शन होते हैं।

एक बाबा के कथन को डॉ0 श्रीमाली ने अंगीकार ही नहीं किया है, जीवन में आत्मसात् कर लिया है – 'योग एवं मंत्र, तंत्र साधना में तुम जितने ही निष्णात होओ, जितने ही ज्यादा सफल होओ उतने ही ज्यादा तुम

गृहस्थ दिखो। व्यर्थ का दिखावा मत करो, नहीं तो लोग तुम्हें जिन्दा ही नहीं रहने देंगे। बिलकुल साधारण बने रहो, उकसाने पर भी चमत्कार प्रदर्शन में मत लग जाओ, दिन भर साधारण गृहस्थ बने रहो, पर रात्रि में तीन से पांच बजे तक प्रभु के समीप रहो—यही सफलता सच्ची होगी, तुम आराम से जिन्दा रहोगे, अन्यथा ये धन पिपासु तुम्हें हाथों-हाथ ऊपर उठायेंगे, तलवे सहलायेंगे, पर काम निकलने के बाद मुड़कर देखेंगे भी नहीं।'

हरिओम बाबा के शब्द भी इनके जीवन में आत्मसात् हो गये हैं – 'यदि दुनियां में सुखपूर्वक रहना चाहो तो विरोधी स्थितियों में रहो; अगर तुममें कुछ सिद्धि है, तो भूलकर भी उसका प्रदर्शन मत करो, अत्यन्त साधारण स्थिति में रहो, यदि किसी विषय के ज्ञाता हो तो उस विषय में अज्ञानी बने रहो, यदि दुनिया में जीवित रहना है, तो साधारण—अत्यन्त साधारण बन कर रहो जिससे तुम्हारी वास्तविकता खुल न जाय।'

और इसमें कोई दो राय नहीं, कि ये पंक्तियां डॉ0 श्रीमाली ने अपने जीवन में पूरी तरह से उतार ली हैं, इसीलिए वे साधारण वेषभूषा में, साधारण प्रकृति में और साधारण स्थिति में रहते हैं। यद्यपि वे गृहस्थ हैं, पर गृहस्थ की उलझनों से अपने आपको बचाये हुए हैं –

'निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनः'

अर्थात् 'गृहस्थ में रहते हुए भी गृहस्थी मत बने रहो।'

उनका आप्तवाक्य है, इसलिए उनकी ख्याति, प्रशंसा और विश्वस्तरीय प्रतिष्ठा सुनने वालों के दिमाग में जो विचार बनता है, वह अहं का बनता है, कि विश्वस्तरीय प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला व्यक्ति सात पर्दे में छुपकर रहने वाला होगा, मिलेगा ही नहीं या जमीन पर पांव ही नहीं रखता होगा या सीधे मुंह बात ही नहीं करता होगा आदि, आदि—परन्तु ऐसा सोचने वाला व्यक्ति जब डॉ0 श्रीमाली के द्वार पर पहुंचता है, तो स्वयं के सम्मान में डॉ0 श्रीमाली को उठते देख वह भौचक्का हो जाता है, बिना किसी लाग-लपेट के बात करते देख वह हैरान हो जाता है – और साधारण जीवन,

निश्छल हास्य और मृदु स्वभाव देखकर वह आश्चर्यचकित हो जाता है, पर वास्तविकता यही है और वह व्यक्ति अपने आपमें उलझता ही जाता है। जब कोई बुद्धि से अजीर्ण हुआ व्यक्ति चमत्कार प्रदर्शन की बात करता है, तो डॉ0 श्रीमाली बिल्कुल सामान्य तरीके से उत्तर देते हैं –

चमत्कार . . . मेरे पास चमत्कार कहां? मैं तो स्वयं भी तुम्हारी तरह एक साधारण मानव हूं भाई! न तो मुझे मंत्र शास्त्र का ज्ञान है और न तंत्र ज्ञान। ज्योतिष हस्तरेखा ज्ञान भी थोड़ा-बहुत है, मुझसे तो कई बड़े-बड़े योगी-महात्मा हैं, जो पब्लिसिटी पर लाखों-करोड़ों खर्च करते हैं, मठ हैं, कारें हैं – चमत्कार तो उनके पास हैं, तुम्हें तो उनके पास जाना चाहिए। साधु-जीवन और लाखों रुपये विज्ञापन पर खर्च करते रहते हैं! – यह चमत्कार नहीं तो और क्या है . . . और इससे ज्यादा, इससे ऊंचा चमत्कार तुम्हें क्या देखना है' – और सामने वाला व्यक्ति चुप कर जाता है।

मैंने डॉ0 श्रीमाली के वास्तविक स्वरूप को भी देखने का प्रयास किया है, उनकी सिद्धियों की झांकी भी देखने का सुयोग्य मिला है।

उनके द्वारा स्थापित व संचालित विभिन्न केन्द्रों में सुव्यवस्थित ढंग से समाज व व्यक्ति की उन्नति के लिए निरन्तर शोध होता रहता है। इनके निर्देशन में इन केन्द्रों द्वारा किये जा रहे कार्य विश्व के लिए, पूरी मानव जाति के लिए अत्यधिक लाभकारी एवं अन्यतम हैं। एक प्रकार से देखा जाय, तो सारा कार्य व्यवस्थित तरीके से सुनियोजित ढंग से चलता रहता है; मैं भारत में और विदेशों में काफी घूमा हूं तथा कई कार्यालय एवं प्रतिष्ठान देखें हैं, परन्तु जिस प्रकार से व्यवस्था एवं सुनियोजिता यहां देखी है, वैसी व्यवस्था बहुत ही कम स्थानों पर देखी होगी।

इसका मूल कारण पंडित जी का चुम्बकीय व्यक्तित्व और उनका व्यवहार है, मैं इस अवधि में कई कर्मचारियों से मिला भी हूं, उनके मन की बात जाननी चाही है और मैंने यह पाया है, कि सभी संतुष्ट हैं, पंडित जी के पितृवत् स्नेह से अभिभूत हैं।

मैंने जहां पंडित जी के ज्योतिष और मंत्र शास्त्री के स्वरूप का

दर्शन किया है, वहीं वे अच्छे आयुर्वेदिक चिकित्सक भी हैं।

इस आधार पर मैं यह कह सकता हूं, कि डॉ0 श्रीमाली इस युग के श्रेष्ठतम साधक हैं, मंत्र शास्त्र के महर्षि हैं तथा ज्योतिष के क्षेत्र में अभिनव वराहमिहिर हैं और श्रेष्ठ आयुर्वेदाचार्य हैं—यह प्रशंसा नहीं वास्तविकता है।

एक ही व्यक्ति में इतने अधिक गुणों का समावेश कई बार मुझे आश्चर्यचकित कर चुका है, उनकी सिद्धियों एवं सफलताओं से मैं हतप्रभ रहा हूं और इन सब पर उनकी नम्रता और विनयशीलता ने मुझे घायल कर दिया है। प्रातः लगभग आठ बजे के करीब वे अपना नित्य नियम, स्नान, संध्या पूजा आदि से निवृत्त होकर आगन्तुकों से मिलने वाले कक्ष में आ जाते हैं, उस समय तक काफी लोग बाहर लॉन में चहलकदमी करते दिखाई देंगे, इनमें देश का मंत्री भी हो सकता है या कोई करोड़पति भी, कोई साधु भी दिखाई दे सकता है और गरीब, फटे हाल मजदूर भी; डॉ0 श्रीमाली सबसे एक-एक कर मिलेंगे, उनकी समस्याएं सुनेंगे, उन्हें समाधान देंगे और यथासंभव उन्हें सहायता देंगे। जिस समय कोई व्यक्ति उनसे मिलने जाता है, तब अपनी समस्याओं एवं परेशानियों से आक्रांत दिखाई देता है, पर जब वह कक्ष से बाहर निकलता है, तो शांत, चिन्तामुक्त, हंसता-मुस्कराता हुआ। मैंने कई लोगों के मुंह से सुना है – डॉ0 श्रीमाली में अद्‌भुत ज्ञान और साधना है, जिसके बल पर वे जहां एक ओर बिना कुछ पूछे ही भूत, भविष्य, वर्तमान जान लेते हैं, वहीं दूसरी ओर उसका समाधान भी स्पष्ट कर देते हैं।

मुलाकातियों से निपटते-निपटते ग्यारह बज जाते हैं, ग्यारह बजे वे मध्याह्न संध्या सम्पन्न करते हैं, इसके बाद भोजन कर पन्द्रह मिनट अखबार आदि पढ़ते हैं, साढ़े ग्यारह बजे केन्द्र के नाम नित्य लगभग हजार से बारह सौ तक पत्र आदि आते हैं, जो कि भारत के प्रत्येक अंचल से और विदेशों से आते हैं, डॉ0 श्रीमाली के सचिव महत्त्वपूर्ण पत्रों को उनकी टेबल पर रख देते हैं, प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पत्र से सम्बन्धित टिप्पणी तथा हिदायतें बता देते हैं और कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर सचिव को मजमून लिखवा देते हैं।

पत्रों के बाद वे पुस्तक लेखन आदि का कार्य करते हैं, साढ़े पांच से आठ बजे तक सायंकालीन मुलाकातियों से बातचीत करने में लगाते हैं, आठे बजे रात्रिकालीन संध्योपासना से निवृत्त हो कर घंटे-आध घंटे घूमने निकल जाते हैं, नौ बजे से घर पर ठहरे विशिष्ट मेहमानों से बातचीत करते हैं, दूसरे दिन का कार्यक्रम सुनते हैं, आवश्यक निर्देश देते हैं तथा ग्यारह बजे के लगभग घर के सदस्यों के अलावा विशिष्ट मेहमान जो घर पर ठहरे होते हैं, वे भी भोजन में शामिल होते हैं, इस समय हंसी-मजाक का वातावरण बना रहता है, ये क्षण तो निर्द्वन्द्व, निर्मुक्त होते हैं, वे सौभाग्यशाली ही होते हैं, जो डॉ0 श्रीमाली के साथ इस समय भोजन पर होते हैं। भोजन के तुरन्त बाद डॉ0 श्रीमाली अपने साधना कक्ष में चले जाते हैं और अन्दर से दरवाजा बन्द हो जाता है, प्रात: फिर आठे बजे तो वे स्नान-संध्या, पूजादि से निवृत्त होकर कक्ष में बैठे दिखाई देते हैं, रात्रि के बारह बजे के बाद वे कब सोते हैं, कब उठते हैं, कुछ ज्ञात नहीं – योगियों की माया योगी ही जानें।

इस प्रकार से प्रात: चार बजे से रात्रि के बारह बजे तक, जो हमारे समक्ष दर्शनीय हैं; डॉ0 श्रीमाली का एक-एक मिनट बंधा हुआ होता है, मैं देखता हूं और एमिस गवाह है, .कि बीस-बीस घण्टे नित्य अपने कार्य में व्यस्त – एक मिनट की भी फुर्सत नहीं – फिर भी उनके चेहरे पर शिकन नहीं, तनाव नहीं, थकावट नहीं – कितनी जीवट शक्ति है – कितनी शक्ति है इस व्यक्तित्व में!

दिन भर टेलीफोन खड़खड़ाता ही रहता है, घंटी बोलती ही रहती है, सैकड़ों ट्रंक–टेलीफोन–बातचीत और यथासम्भव सभी के प्रश्नों के उत्तर दिये जाते हैं – सभी को संतुष्ट किया जाता है।

यह बात नहीं, कि डॉ0 श्रीमाली में कमियां न हों, उनमें कमियां भी हैं, उनकी कमजोरियों में प्रमुख है – वे 'संकोची' हैं, स्वयं तकलीफ, तनाव भोगते रहेंगे, पर न तो किसी को कुछ कहेंगे और न चेहरे पर ही इस बात का आभास होने देंगे; किसी को कहेंगे इसलिए नहीं, कि सोने वाले को तकलीफ न हो, उनकी वजह से किसी को दु:ख या असुविधा

न हो। यह उन्हें सह्य नहीं, कि रात के दस बजे रहें हैं, मुलाकाती बैठा है, पूजा-साधना का समय हो गया है, पर कहेंगे नहीं; स्वयं असुविधा भोग लेंगे, पर दूसरों को असुविधा न हो या उनके दिल को ठेस न लगे, इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखेंगे।

उनकी दूसरी कमी है 'उदारता' – और इस उदारता की वजह से वे कई बार ठगे गये हैं, कई युवक हाथ दिखाने आते हैं और आर्थिक अभाव का रोना रोते हैं, तो पण्डित जी उदारतावश उन्हें भोजन कराते हैं और टिकट के पैसे भी अपने पास से दे देते हैं, बाद में ज्ञात होता है कि वह युवक धूर्त था। सैकड़ों-हजारों लोगों को सहायता दे चुके हैं, किसी गरीब को ठिठुरता देखते हैं तो घर से कोई कम्बल या वस्त्र लाकर दे देते हैं, इसी प्रकार फीस के नाम पर, बेटी के विवाह के नाम पर कई लोग इन्हें ठग चुके हैं और ये अपने आपको ठगाते रहते हैं, कई बार तो इन्हें ध्यान रहता है कि सामने वाला व्यक्ति मुझे ठग रहा है, पर ये जानबूझ कर ठगाते रहते हैं, कहने पर उत्तर मिलता है –

. . . 'अरे भाई! उसको पैसे की जरूरत होगी और इसके सिवा उसके पास कोई चारा नहीं होगा, मजबूरी होगी बेचारे की' . . . और मुस्करा पड़ते हैं।

मैं एमिस की डायरी में नोट किये गये कुछ विशिष्ट क्षणों को आप के सामने खुलासा करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं, अतः दो-चार अमल्य क्षण आप भी हमारे साथ व्यतीत करें –

***

आज गुरु पूर्णिमा है, भारत के कोने-कोने से लोग आये हुए हैं, बाहर का दालान पूरा भरा हुआ है, तिल रखने को भी जगह नहीं है, चारों ओर उमंग, उत्साह, उछाह है; मैं और एमिस भी आज काफी पहले उठ गये थे, घड़ी देखी तो लगभग चार बजे थे। हमारे कमरे से स्नान घर की ओर जाने के लिए गुरुजी के कमरे के पास से ही गुजरना

पड़ता है, गुरुजी का साधना कक्ष सुवासित है, अन्दर से घृत दीप व अगरबत्तियों की सुगन्ध बाहर आ रही है . . .

— 'अरे! गुरुजी तो उठ गये? कब उठे? कल रात तो बारह बजे तक बातचीत करते रहे थे, फिर साधना कक्ष की ओर चले गये थे, तो क्या सोये ही नहीं! गुरुजी सोते भी हैं या नहीं!'

हम जल्दी-जल्दी तैयार होकर बाहर निकल आये, सुबह से ही शिष्यों की भीड़ लगी थी, लगभग आठ बजे गुरुजी साधना कक्ष से बाहर आये, हम सबने अभ्यर्थना की, कुछ शिष्यों ने गुरु-वस्त्र भेंट किये, मैं भी दो दिन पहले गुरुजी के लिए कुरता व धोती खरीद कर ले आया था। चारों तरफ गहमागहमी थी, प्रसन्नता थी।

लगभग ग्यारह बजे भीड़ कुछ कम हुई, गुरुजी के चेहरे पर विशेष ओज व प्रसन्नता थी, वे बाहर से उठकर अपने निजी कक्ष की ओर गये, मैं और एमिस खड़े थे, भाव विह्वलता से वस्त्र भेंट ही नहीं कर पाये थे, एमिस के उत्साह देने पर हम दोंनों पीछे-पीछे गये, द्वार खुला था — हम भीतर गये, गुरुजी अपने गुरुदेव श्री सच्चिदानन्द जी के चित्र के सामने स्थिर खड़े थे, भाव विह्वल, अडिग, स्थिर, प्रेमाभिभूत से . . . उनकी आंखों से अश्रुधार बह रही थी . . . अनुपम दृश्य था — कितनी लयता है अपने गुरुदेव के प्रति . . .

कुछ क्षणों तक हम भी चुपचाप निःशब्द खड़े रहे, गुरुजी घूमे, हमें खड़े देखकर मुस्कुराये, उस समय का, उस दृश्य का वर्णन कैसे करूं . . . उस दृश्य को अनुभव ही किया जा सकता है, लिखा जाना संभव ही नहीं है. . . . सफेद धोती, सफेद ही कुरता, ओजपूर्ण मुख मण्डल, मंद-मंद मुस्कुराहट, पैरों में खड़ाऊं, साक्षात् देव तुल्य . ... देखा तो मैंने नहीं, पर पढ़ा है, कि ईसा की आंखों में साक्षात् करुणा व्याप्त थी — और मैंने करुणा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन गुरुजी की आंखों में किया है।

गुरुजी अभी तक मुस्कुरा रहे थे . . . मैंने रुंधे गले से तथा भाव विह्वलता के साथ वस्त्र गुरुदेव के चरणों में रख दिये तथा उनके चरणों

में बैठ गया, तभी गुरुजी ने अपने चरणों की खड़ाऊं मेरी गोद में दे दी . . . आज मैं अपने आपको विश्व का सर्वाधिक खुशनसीब व्यक्ति, शिष्य समझता हूं, क्योंकि गुरु की तरफ से शिष्य के लिए यह सर्वोच्च प्रसाद होता है; मेरी और एमिस की आंखें भीग गईं उन दिव्यतम क्षणों में . . . झरने लगीं झर-झर झर-झर . . .

वे खड़ाऊं आज भी मेरे पास धरोहर के रूप में, प्रसाद के रूप में, गुरुदेव की स्मृति के रूप में सुरक्षित हैं।

* * *

जहां डॉ0 श्रीमाली से मिलने के लिए गृहस्थ, व्यापारी, नेता, अभिनेता आदि आते रहते हैं, वहीं साधु-संन्यासी, योगी भी मंत्र साधना सीखने या विचार-विमर्श करने के लिए आते ही रहते हैं।

एक बार 'स्वामी सियाराम शरण' आये थे, उम्र साठ-पैंसठ के लगभग, धवलकेशी पर हृष्ट-पुष्ट, तेजस्वी – उन दिनों गुरुजी के परिचित ज्यादा आ गये थे, अतः स्वामी जी को मेरे ही कमरे में ठहरने की आज्ञा दे दी थी, और वे मेरे ही कमरे में ठहरे थे।

ठहरने के दूसरे या तीसरे रोज प्रातः साढ़े चार बजे के लगभग उठकर शौचादि निवृत्ति के लिए बाहर गये, रास्ता गुरुजी के साधना कक्ष के सामने से था, सामान्यतः गुरुजी साधना कक्ष का दरवाजा अन्दर से बंद कर देते हैं, परन्तु उस दिन भूल से थोड़ा खुला रह गया था और दो किवाड़ों के बीच की झिर्री से अन्दर का दृश्य साफ दिखाई पड़ रहा था।

स्वामी जी ने देखा, कि गुरुजी सिद्धासन मुद्रा में आसन पर बैठे हैं, सामने दीपक व अगरबत्ती प्रज्वलित है। स्वामी जी अपने मन का कौतूहल न रोक सके और कमरे के अन्दर घुस पड़े . . . पर कक्ष में कदम रखा ही था, कि धड़ाम से गिर पड़े और गिरते ही बेहोश हो गये।

साधना के बीच में ही उठकर गुरु जी ने मुझे पुकारा तथा हम दोनों

ने स्वामी जी को पलंग पर ले जाकर लिटाया, करीब तीन घंटों के बाद उन्हें होश आया, तब तक डॉ0 श्रीमाली चिन्तातुर बराबर सिराहने खड़े रहे, होश आने के बाद जान में जान आई।

गुरुजी बहुत बिगड़े, बोले– तुम्हें समझा देना चाहिए था, पोलर! जब मैं साधना में होता हूं, तो चतुर्दिक 'वात्यायन तरंग चक्र' घूमता रहता है, अत: बिजली सा करण्ट लगना स्वाभाविक है, यह तो अच्छा हुआ कि स्वामी जी झटके को झेल गये अन्यथा मुंह काला हो जाता।

स्वामी जी इस घटना को आज भी नहीं भूले होंगे।

* * *

एक बार उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध 'तांत्रिक कार्तवीर्यार्जुन स्वामी' मिलने के लिए आये, मोटा सा शरीर, बड़ी-बड़ी आंखें, डरावना सा चेहरा और उलझी लटें। हम सब दोपहर के भोजन के बाद बैठे ही थे। वे दो-तीन दिन से आये हुए थे, पर समयाभाव के कारण गुरुजी का मिलना संभव नहीं हो सका था, अत: एक प्रकार से चिढ़ से गये थे।

उस दिन धड़धड़ाते हुए सीधे अन्दर आ गये, जहां गुरुजी, माताजी, बच्चे और हम सब बैठे थे . . . आते ही बोले– 'हम चार दिन से यहां पड़े हैं, हमारा एक-एक मिनट कीमती है, हमारा नाम कार्तवीर्यार्जुन तांत्रिक है, आपको पता होना चाहिए।'

– 'आप बैठिये, आपके बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं थी फरमाइये! मेरे योग्य जो भी सेवा हो, कहें।'

पर वे कहां सुनने वाले थे, ऊलजलूल बकते-बकते गालियां देने लग गये, हम सबको क्रोध आ रहा था, पर गुरुजी के संकेत पर चुपचाप बैठे थे।

गालियां देते-देते उन्होंने माताजी को असभ्य गाली दे दी, तब डॉ0 श्रीमाली ने किंचित रोष से कहा – 'आप या तो असभ्य हैं, या मूर्ख हैं।

आपकी गालियां मैं सहन कर रहा था, पर महिलाओं की इज्जत' . . .

एमिस क्रोध से लाल भभूका हो गई थी, बोली – 'प्लीज! आप बाहर चले जायें . . . आप' . . .

पर तब तक तो तांत्रिक ने एमिस पर 'मृत्यु मूठ' फेंक दी, एमिस धड़ाम से गिर पड़ी।

डॉ0 श्रीमाली क्रोधावेश में अग्निस्वरूप हो गये और गुरु जी को स्मरण करते ही विचित्र घटनाएं कार्तवीर्यार्जुन के साथ घटने लगीं 'पीड़न मंत्र' द्वारा गति रोक दी, जिससे कि भाग न सके और मंत्रों के माध्यम से पिटाई शुरु हो गई, वह चिल्ला रहा था और हम सब सुन रहे थे, जैसे उसके पूरे शरीर पर डंडों की बौछार हो रही हो, लातों-घूसों की वर्षा हो रही हो। दो-चार मिनट बाद ही वह हांफने लगा, आंख के पास से चमड़ी फट गई, पूरा शरीर सूज गया, मुंह से खून निकलने लग गया।

वह चिल्ला रहा था, गिड़गिड़ा रहा था, प्राणों की भीख मांग रहा था, पर गुरुजी क्रोधावेश में थे . . . उफ्!

तब तक 'तारन मंत्र' द्वारा एमिस होश में आ गई थी, स्वस्थ भी हो गई थी, पर वह तांत्रिक चिल्ला रहा था, मार खा-खाकर शरीर सूज गया था, आखिर माताजी ने गुरुदेव से प्रार्थना की, तब जाकर डॉ0 श्रीमाली जी का क्रोध शांत हुआ।

बोले – 'दुष्ट! अभी क्या हुआ है, उम्र भर खाट पर पड़ा रहता, तेरी तांत्रिक हेकड़ी तो एक मिनट में खत्म कर सकता था, उठ . . . माफी मांग इन सबसे, तभी तेरा पिण्ड छूटेगा।'

वह गिड़गिड़ा रहा था, माफी मांग रहा था, माताजी से, एमिस से . . . मुझसे . . . और गुरुजी का संकेत मिलते ही ऐसा भागा कि पीछे घूमकर देखने का भी होश नहीं रहा।

मैंने गुरुजी को कई रूपों में देखा है, वह क्रोधित मुद्रा . . . साक्षात् रुद्र . . . इस जीवन में शायद ही किसी अन्य ने गुरुजी का इतना क्रोधित

रूप देखा हो . . . यह संस्मरण भी एमिस की डायरी का अमूल्यपूर्ण कलश बन गया है।

* * *

सर्दी के दिन थे, हवा चलने की वजह से सर्दी और बढ़ रही थी, प्रात: भ्रमण से गुरुजी, माताजी, मैं और एमिस लौट रहे थे, कि सामने से ही कानपुर के प्रसिद्ध सेठ आते दिखाई दिये। वे कानपुर से रात की गाड़ी से आकर होटल में ठहरे थे और प्रात: जल्दी ही गुरुजी से मिलने आ गये थे; जब पता चला, कि गुरुजी प्रात: भ्रमण को गये हैं, तो दिशा ज्ञात कर वे भी आ गये थे।

सेठ जी के हाथों में कीमती शाल था, जो गुरुजी को भेंट करने के लिए लाये थे, मार्ग में उन्होंने गुरुजी के चरण-स्पर्श किये और कुछ नम्रता और कुछ बड़प्पन के साथ वह शाल गुरुजी के कंधों पर ओढ़ा दी।

सेठ जी के साथ घर तक आते-आते घर से कुछ ही दूर एक भिखारी हाथ फैलाये ठिठुर रहा था, शरीर पर धोती के अलावा तार-तार कुरता . . . भिखारी ने याचना की – 'दाता! पंडित जी!!'

गुरुजी ने उधर दृष्टि डाली और कंधों पर से शाल उतार कर उसके शरीर पर डाल दी और चुपचाप आगे बढ़ गये।

सेठ जी पानी-पानी हो गये . . . कितनी महानता . . . कितनी उदारता . . . कितना त्याग . . . कितनी निस्पृहता।

* * *

एक बार एमिस ने जिद की – 'गुरुजी आज कुछ खाने की इच्छा हो रही है, पर ऐसी वस्तु, जो भारत में न हो।'

– 'क्या?'

– 'आप तो मंत्रों के द्वारा कोई भी चीज मंगा सकते हैं, कोई ऐसी चीज खिलाइये, जो भारतीय न हो . . . भारत में न बनती हो।'

– 'मैं यह सब छोड़ चुका हूं . . . चमत्कार प्रदर्शन न तो मैं चाहता हूं . . . न करता हूं।'

– 'पर मैं तो आपकी बेटी हूं, क्या आप बेटी की इतनी भी बात नहीं रखेंगे।'

– 'तू जिद मत किया कर एमिस!' . . . और उन्होंने ईरान की बिना गुठली की खजूर मंगाकर हम सबको आश्चर्यचकित कर दिया था।

– वास्तव में उस खजूर का स्वाद अनिर्वचनीय था।

***

एक बार एक रोगी आया, मरणासन्न . . . जर्जर . . . वृद्ध, उसे अपस्मार था।

देखते ही गुरुजी बोले – 'इसे क्यों लाये हो ? इसका बचना सम्भव नहीं है।'

वृद्ध का पुत्र बोला – 'आपके द्वार पर आने के बाद भी मेरे पिताजी मर जायेंगे, तो फिर ईश्वरेच्छा . . . पर मुझे भरोसा है, कि ऐसा होगा नहीं . . . हो भी नहीं सकता।'

गुरुजी दो क्षण सोचते रहे, फिर अपने साधना कक्ष में चले गये। करीब पांच मिनट बाद लौटे, तो उनके हाथ में एक शीशी थी, जिसमें तरल पदार्थ सा भरा हुआ था, गुरुजी ने वह तरल पदार्थ वृद्ध के गले में डाल दिया।

आश्चर्यजनक परिणाम, तीन-चार दिन बाद वह स्वयं चलकर गुरुजी के पास आया . . . जो वृद्ध . . अब मरा . . . अब मरा . . . वह जी गया . . . सब कुछ आश्चर्यजनक था।

बाद में ज्ञात हुआ, कि कुछ विरोधियों की यह बदनाम करने की चाल थी, पर - - - योगियों के रहस्य को कौन जान सकता है।

* मैंने उन्हें एक बिटिया को अपनी आयु का कुछ भाग देते हुए देखा है।
* गरीब ब्राह्मण कन्या का अपने व्यय पर विवाह कराते देखा है।
* अपने शिष्य के रोग को अपने ऊपर लेकर तड़पते हुए देखा है।
* किसी की परेशानी को सुनकर चिंतातुर होते देखा है।
* बिना हिचकिचाहट ऊंची से ऊंची वस्तु का त्याग करते हुए देखा है।

निस्सन्देह डॉ0 श्रीमाली इस युग की अद्वितीय विभूति हैं, सद्गृहस्थ हैं, गृहस्थ के रूप में संत हैं, संत के रूप में योगी हैं, योगी के रूप में करुणा, प्रेम और दया के मूर्तिमंत रूप हैं।

उपसंहार

पूज्यपाद गुरूदेव से जो भी मिला,

उसे यह एहसास होती ही है,

कि गुरू प्रवर श्री नारायण

अनन्त महिमा-सिन्धु हैं,

जिनकी कृपा-तरंगों के स्पर्श से

असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

अश्रुप्रसूनों से

अपनी भावाञ्जलि सुसज्जित कर

ऋषिप्रवर के चरणों में अर्पित करते हुए

विनयवत् प्रार्थनामय हूँ, कि

'वे अपने श्रीचरणों की शीतल छाया

मुझ अकिञ्चन पर बनायें रखें

और मेरे प्रणिपात को स्वीकार कर

अपने दिव्य तेजस स्वरूप को

हृदयंगम करने का आशीर्वाद

प्रदान करें।
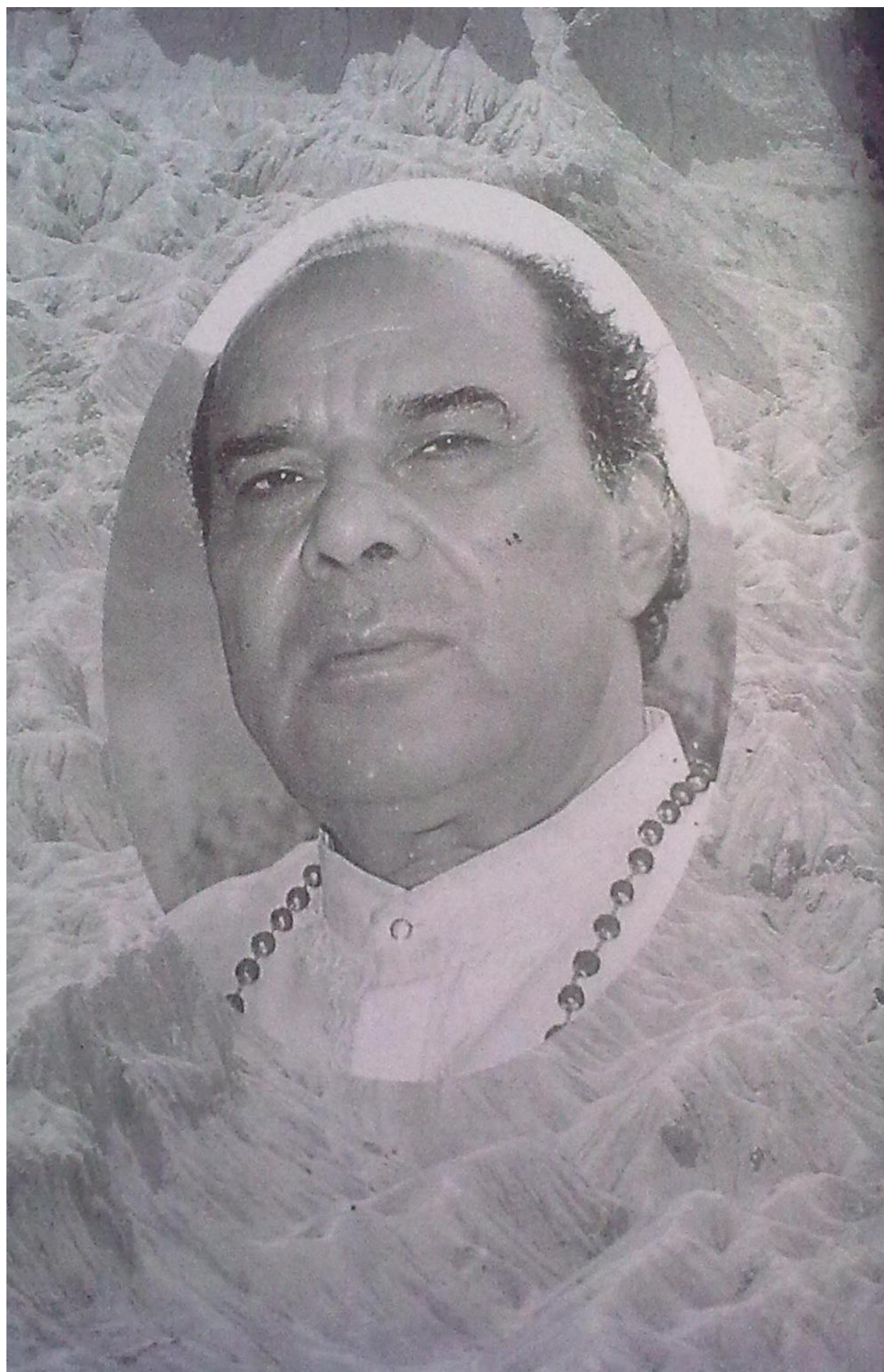
जिस समय मैं अपने देश से रवाना हुआ था, तब मेरे और एमिस के मन में भारत दर्शन की इच्छा थी, पर इससे भी ज्यादा इस बात की पिपासा थी, कि भारत ज्योतिषियों का देश है, भविष्यवक्ताओं का देश है, मंत्र-तंत्र साधना एवं सिद्धियों का देश है। शायद कोई ऐसा ज्योतिर्विद मिल जाये, जिससे मेरी धारणा को बल मिल सके, अपने देश में, विश्व के अन्य देशों में जाकर गर्व के साथ कह सकूं, कि भारत अभी तक इन क्षेत्रों में अग्रगण्य है, मार्गदर्शक है, सर्वोच्च है।

मैं स्वतंत्रचेता व्यक्ति रहा हूं, बुद्धिवादी रहा हूं, बुद्धि पर भावनाओं को कभी भी हावी होने नहीं दिया है, कही-सुनी बातों पर विश्वास न कर 'आंखिन देखी' पर विश्वास किया है और मैं आज पूर्ण सक्षमता के साथ कह सकने की स्थिति में हूं, कि डॉ0 श्रीमाली साधारण दिखते हुए भी महान हैं, विनम्र होते हुए भी मंत्र-तंत्र के अक्षय भण्डार हैं, उदार होते हुए भी ज्योतिष के क्षेत्र में सर्वोपरि हैं। यह मेरा सौभाग्य रहा, कि भारत आकर डॉ0 श्रीमाली से मिलने का मौका मिला, उनके चरणों में हम पति-पत्नी को बैठने का

सौभाग्य प्राप्त हुआ और खुली आंखों से उनके ज्योतिष का ज्ञान, साधना एवं सिद्धियों को पहिचानने का गौरव प्राप्त हुआ।

भारतीय परम्परा के अनुसार डॉ0 श्रीमाली की यह नम्रता है, कि जब भी कोई अपरिचित या परिचित मंत्र-तंत्र-यंत्र, साधना, सिद्धि, ज्योतिष आदि पर चर्चा करता है, तों डॉ0 श्रीमाली का कथन होता है – "मैं तो इस अथाह सागर में बिंदुवत हूं, न तो मुझे विधिवत् ज्ञान है और न क्षमता . . . "

. . . पर जो गहराई में प्रवेश करता है, वही देख पाता है, कि इस सागर की गहराई में कितने अमूल्य रत्न हैं, उज्ज्वल . . . अमूल्य . . . अद्‌भुत . . . आश्चर्यजनक।

मंत्र-तंत्र का अद्‌भुत ज्ञान, ज्योतिष एवं अचूक भविष्यवाणियों की योग्यता, असम्भव को सम्भव बना देने की क्षमता . . . उनके व्यक्तित्व तथा गुणों का वर्णन करने के लिए मैं जों भी शब्द सोचता हूं, वे थोड़े प्रतीत होते हैं; हर बार ऐसा लगता है, कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, मेरी लेखनी और मेरे शब्द वह सब कुछ कह नहीं पाते . . . हमेशा कुछ न कुछ महत्त्वपूर्ण छूट ही जाता है। उनके जीवन में कई पहलू हैं और प्रत्येक पहलू एक दूसरे से बढ़कर हैं, महान हैं। उनका व्यक्तित्व हिमालयवत विराट और गंगा के समान पवित्र है, जो कुछ भी मेरे शब्द और लेखनी कह सके, वह कम है, न्यून है।